ISSN : 0976-0024

जनवरी-मार्च 2024

वर्ष 30, अंक : 118

PEER REVIEWED REFREED JOURNAL

महिला Mahila

विधि भारती Vidhi Bharati

विधि चेतना की द्विभाषिक (हिन्दी-अंग्रेजी) शोध पत्रिका

Research (Hindi-English) Quarterly Law Journal

- भारतीय संविधान एवं कल्याणकारी राज्य
- आचार समिति
- भारतीय न्याय संहिता 2023 का संक्षिप्त विश्लेषण
- यह भारत देश है मेरा! संदर्भ भारत का संविधान
- दूरदर्शन से ओ.टी.टी. तक का सफर : रोमांचक या घातक? कितनी पहुंच है कानून की इन तक?
- उच्चतम न्यायालय का बिलकिस बानो के मामला में फैसला : गोधरा त्रासदी का पुनर्कथन
- भारत में महिलाओं के बढ़ते चरण
- अभिहित भागीदार और उसका उत्तर दायित्व : सीमित दायित्व भागीदारी अधिनियम, 2008 के अंतर्गत संबंधित विधि का अध्ययन
- जल संकट मानव अधिकार एवं मानव अस्तित्व में एक बाधा : बचाव एवं समाधान
- यूनिफॉर्म सिविल कोड : समान नागरिक संहिता
- हमारा तिरंगा : हमारी जानकारी
- विधि भारती परिषद् का भव्य सम्मान समारोह और पुस्तक/पत्रिका लोकार्पण (रिपोर्ट)
- सुप्रीम कोर्ट के 85 ऐतिहासिक निर्णय (पुस्तक समीक्षा)
- Bhartiya Nagrik Suraksha Sanhita 2023 : An Evaluation from VICTIM Centric Prospective
- The Vanishing Judicial Ethics and Problem of Accountability : Structuring a Workable Approach

Editor-in-Chief : Santosh Khanna

महिला विधि भारती, अंक : 118, जनवरी-मार्च 2024

विज्ञप्ति
विधि भारती परिषद्
राष्ट्रीय विधि भारती पुस्तक पुरस्कार

वर्ष 2005 से विधि और न्याय के क्षेत्र में हिंदी के प्रचार-प्रसार तथा हिंदी विधि लेखन को बढ़ावा देने के लिए विधि भारती परिषद् ने हिंदी विधि पुस्तकों पर 'राष्ट्रीय विधि भारती पुस्तक पुरस्कार' प्रारंभ किए थे। विधि पुस्तकों पर प्रथम पुरस्कार 7100/–, द्वितीय पुरस्कार 5100/–, तृतीय पुरस्कार 3100/– रुपए है।

वर्ष 2024 का राष्ट्रीय विधि भारती पुस्तक पुरस्कार पिछले तीन वर्षों अर्थात् 2021, 2022 और 2023 में भी प्रकाशित विधि पुस्तकों पर दिया जाएगा। विधि भारती पुस्तक पुरस्कार का निर्णय एक तीन सदस्यीय पुस्तक पुरस्कार निर्णायक मंडल द्वारा किया जाएगा जो अंतिम होगा। पुरस्कार विधि भारती परिषद् के एक भव्य समारोह में प्रदान किए जाएँगे।

विधि भारती परिषद् का संक्षिप्त परिचय

विधि भारती की स्थापना 1992 में तथा इसका पंजीकरण 1993 में किया गया। वर्ष 1994 में इसकी त्रैमासिक द्विभाषिक (हिंदी-अंग्रेजी) पत्रिका 'महिला विधि भारती' का प्रकाशन आरंभ हुआ। 30 वर्ष की अवधि में इसके 118 अंक प्रकाशित हो चुके हैं और अंक 119 प्रकाशनाधीन है। इस पत्रिका को दिल्ली सरकार की हिंदी अकादमी से सर्वोत्तम संपादन का दो बार पुरस्कार प्राप्त हो चुका है। परिषद् ने नई सहस्राब्दी के शुभारंभ के समय 'विधि भारती सम्मान' आरंभ किए। विधि भारती सम्मान ऐसे महानुभावों को दिए जाते हैं जिन्होंने जीवन में सर्वोत्तम मानव मूल्यों की स्थापना की हो तथा विधि और न्याय के क्षेत्र में अद्वितीय योगदान दिया हो।

पुरस्कार हेतु पुस्तकें भेजने की विधि

राष्ट्रीय विधि भारती पुस्तक पुरस्कार के लिए विचारार्थ हिंदी विधि पुस्तक भेजने के इच्छुक लेखक पुस्तक की दो प्रतियों के साथ 1000/– रुपए का बैंक ड्राफ्ट विधि भारती परिषद् के नाम से प्रेषित करें। लेखक पिछले तीन वर्ष में प्रकाशित एक से अधिक पुस्तकों के लिए प्रविष्टियाँ भेज सकते हैं। पुरस्कार के विचारार्थ प्राप्त पुस्तकें किसी भी स्थिति में लौटाई नहीं जाएँगी।

विधि पुस्तकें भेजने की अंतिम तिथि 30 जून, 2024 होगी।

पुस्तकें भेजने का पता :

विधि भारती परिषद्

बी.एच./48, (पूर्वी) शालीमार बाग, दिल्ली-110088
दूरभाष : 011-45578335
मोबाइल : 9899651872, 9899651272
ई-मेल : vidhibharatiparishad@hotmail
वेबसाइट : www.vidhibharatiparishad.in

जनवरी-मार्च **वर्ष 30** **2024**

January-March

अंक : 118

ISSN : 0976-0024

महिला
Mahila

विधि भारती
Vidhi Bharati

विधि चेतना की द्विभाषिक (हिंदी-अंग्रेजी) शोध पत्रिका
Research (Hindi-English) Quarterly Law Journal

(केंद्रीय हिंदी निदेशालय, शिक्षा मंत्रालय के आंशिक अनुदान से प्रकाशित)

ISSN 0976-0024
9 770976 002001

प्रधान संपादक
सन्तोष खन्ना
संपादक
डॉ. उषा देव

PEER REVIEWED REFEREED JOURNAL

पत्रिका में व्यक्त विचारों से सम्पादक/परिषद् की सहमति आवश्यक नहीं है।

Indexed at Indian Documentation Service, Gurugram, India
Citation No. MVB-30/2024

विधि भारती परिषद्
बी.एच./48 (पूर्वी) शालीमार बाग, दिल्ली-110088 (भारत)
मोबाइल : 09899651872, 09899651272, **फ़ोन :** 011-45579335
E-mail : vidhibharatiparishad@hotmail.com, santoshkhanna25@gmail.com
Website : www.vidhibharatiparishad.in

PEER REVIEWED REFEREED JOURNAL

‘महिला विधि भारती’ पत्रिका (पूर्व यू.जी.सी. की सूची में भी शामिल, क्र. 156, पत्रिका संख्या 48462)

विधि चेतना की द्विभाषिक (हिंदी-अंग्रेज़ी) विधि-शोध त्रैमासिक पत्रिका

E-mail : vidhibharatiparishad@hotmail.com

Website : www.vidhibharatiparishad.in

वर्ष 30, अंक : 118, (जनवरी-मार्च, 2024)

प्रधान संपादक : सन्तोष खन्ना

संपादक : डॉ. उषा देव

बोर्ड ऑफ रेफरीज़ एवं परामर्श मंडल

1. डॉ. के.पी.एस. महलवार : चेयर प्रो., प्रोफेशनल एथिक्स, नेशनल लॉ यूनिवर्सिटी, न.दि.
2. डॉ. चंदन बाला : डीन एवं विभागाध्यक्ष, विधि विभाग, जयनारायण व्यास वि.वि., जोधपुर
3. डॉ. राकेश कुमार सिंह : पूर्व डीन एवं विभागाध्यक्ष, फैकल्टी ऑफ लॉ, लखनऊ विश्वविद्यालय
4. डॉ. किरण गुप्ता : पूर्व विभागाध्यक्ष, फैकल्टी ऑफ लॉ, दिल्ली विश्वविद्यालय
5. प्रो. देवदत्त शर्मा : डीएवी (पीजी) कॉलेज, लखनऊ
6. डॉ. सुरेंद्र यादव : निदेशक, स्केल विधि महाविद्यालय, अलवर
7. डॉ. प्रमोद कुमार अग्रवाल : आई.ए.एस. (से.नि.) एवं विधि विशेषज्ञ

परिषद् की कार्यकारिणी, संरक्षक : डॉ. राजीव खन्ना

1. डॉ. सुभाष कश्यप (अध्यक्ष)
2. न्यायमूर्ति श्री लोकेश्वर प्रसाद (उपाध्यक्ष)
3. श्रीमती सन्तोष खन्ना (महासचिव)
4. रेनू (कोषाध्यक्ष)
5. श्री अनिल गोयल (सचिव, प्रचार)
6. डॉ. प्रेमलता (सदस्य)
7. डॉ. आशु खन्ना (सदस्य)
8. डॉ. पूरनचंद टंडन (सदस्य)
9. डॉ. उषा टंडन (सदस्य)
10. डॉ. सूरत सिंह (सदस्य)
11. डॉ. के.एस. भाटी (सदस्य)
12. डॉ. शकुंतला कालरा (सदस्य)
13. डॉ. उमाकांत खुबालकर (सदस्य)
14. अनुरागेंद्र निगम (सदस्य)

शुल्क दर

वार्षिक शुल्क 500/-- रुपए	संस्थागत वार्षिक शुल्क 500/-- रुपए
आजीवन शुल्क 6,000/-- रुपए	संस्थागत आजीवन शुल्क 20,000/-- रुपए

डाक शुल्क अलग

अंक 118 में

1. हमारे लेखक -- 6
2. संपादकीय -- 7
3. भारतीय संविधान एवं कल्याणकारी राज्य / **अंकिता पाल** -- 11
4. आचार समिति / **सतीश चंद्र रस्तौगी** -- 21
5. भारतीय न्याय संहिता 2023 का संक्षिप्त विश्लेषण / **डॉ. एस.एस. दास एवं कीर्तिका सिंह** -- 24
6. यह भारत देश है मेरा! संदर्भ भारत का संविधान / **सन्तोष खन्ना** -- 29
7. दूरदर्शन से ओ.टी.टी. तक का सफर : रोमांचक या घातक? कितनी पहुँच है क़ानून की इन तक? / **सौम्या पांडेय** -- 35
8. उच्चतम न्यायालय का बिलकिस बानो के मामला में फैसला : गोधरा त्रासदी का पुनर्कथन / **डॉ. भूमिका शर्मा और डॉ. तरुण कुमार कौशिक** -- 39
9. भारत में महिलाओं के बढ़ते चरण / **संतोष बंसल** -- 44
10. अभिहित भागीदार और उसका उत्तर दायित्व : सीमित दायित्व भागीदारी अधिनियम, 2008 के अंतर्गत संबंधित विधि का अध्ययन / **डॉ. विपिन कुमार सिंह** -- 49
11. जल संकट मानव अधिकार एवं मानव अस्तित्व में एक बाधा : बचाव एवं समाधान / **प्रो. प्रीति सक्सेना** -- 59
12. यूनिफॉर्म सिविल कोड : समान नागरिक संहिता / **आकांक्षा गुप्ता** -- 64
13. हमारा तिरंगा : हमारी जानकारी / **डॉ. नीति निपुणा सक्सेना** -- 67
14. विधि भारती परिषद् का भव्य सम्मान समारोह और पुस्तक/पत्रिका लोकार्पण (रिपोर्ट) / **डॉ. आशु खन्ना** -- 71
15. सुप्रीम कोर्ट के 85 ऐतिहासिक निर्णय (पुस्तक समीक्षा) / **अंकुर अग्रवाल** -- 74
16. Bhartiya Nagrik Suraksha Sanhita 2023 : An Evaluation from VICTIM Centric Prospective / **Dr. Radheshyam Prasad** – 76
17. The Vanishing Judicial Ethics and Problem of Accountability : Structuring a Workable Approach / **Dr. Neema Qamar** -- 86

हमारे लेखक

अंकिता पाल : असिस्टेंट प्रोफेसर, चमेली देवी इंस्टिट्यूट ऑफ लॉ, इंदौर

सतीश चंद्र रस्तौगी : 1-16/1126, पूर्वांचल रायल पार्क, सेक्टर-137, नोएडा, गौतम बुद्ध नगर, उत्तर प्रदेश-201304, **मोबाइल :** 09810938630, **ई-मेल :** scrastogi1943.com

डॉ. एस.एस. दास : विधि विभाग, डब्रूगढ़ विश्वविद्यालय, असम

कीर्तिका सिंह : विधि शोध छात्रा

सन्तोष खन्ना : संपादक विधि भारती परिषद

सौम्या पांडेय 'पूर्ति' : फ्लैट नं. एच-1308, एवीजे हाइट अपार्टमेंटस, सेक्टर जेटा-1, सांई मंदिर के नजदीक, ग्रेटर नोएडा-201301, **मोबाइल :** 9838979966

डॉ. भूमिका शर्मा : सहायक प्रोफेसर, शारदा विश्वविद्यालय, ग्रेटर नोएडा, उत्तर प्रदेश

तरुण कुमार कौशिक : सहायक प्रोफेसर, शारदा विश्वविद्यालय, ग्रेटर नोएडा, उत्तर प्रदेश

संतोष बंसल : ए-1/7, मियाँवाली नगर, पश्चिम विहार, दिल्ली-110087

मोबाइल : 8860022613

डॉ. विपिन कुमार सिंह : पूर्व शोध छात्र, विधि विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

मोबाइल : 9415172160, 9335480740

पता : 79के/7 पुरादलेल, अल्लाहपुर, प्रयागराज (यूपी), पिन-211006

प्रो. प्रीति सक्सेना : एल.एल.एम., (स्वर्ण पदक विजेता) पीएच.डी.-इन-लॉ एवं निदेशक, स्नातकोत्तर क़ानूनी अध्ययन केंद्र पूर्व डीन स्कूल ऑफ लीगल स्टडीज, मानव अधिकार विभाग के पूर्व प्रमुख, बाबा साहेब भीमराव अंबेडकर विश्वविद्यालय, (एक केंद्रीय विश्वविद्यालय), विद्या विहार, रायबरेली रोड, लखनऊ-25

आकांक्षा गुप्ता : 502, टॉवर-II, हिमार पामहिल्स, सेक्टर-17, गुरुग्राम-122003

मोबाइल : 9810382946

डॉ. नीति निपुणा सक्सेना : विभागाध्यक्ष, इंस्टीट्यूट ऑफ लॉ एंड लीगल स्टडीज, सेज यूनिवर्सिटी इंदौर

डॉ. आशु खन्ना : बीएच-48, पूर्वी शालीमार बाग, दिल्ली-110088

अंकुर अग्रवाल : ई-ब्लॉक, सनसिटी हाइट्स, सेक्टर-54, गुरुग्राम, हरियाणा, पिन-122011,

मोबाइल : 9871899121

Dr. Radheshyam Prasad : Associate Professor (Law), Faculty of Law, University of Lucknow, Lucknow (U.P.), **E-mail :** radheshyampd@gmail.com, **Mobile :** 8979138200,

Dr. Neema Qamar : UTD, Department of Legal Studies, Sant Gahira Guru University, **E-mail :** neemaqamar785@gmail.com

लोक परीक्षा (अनुचित साधनों का निवारण) अधिनियम, 2024 : एक नज़र

वर्ष 2024 के आम चुनाव से पहले सत्तरहवीं लोकसभा का अंतिम सत्र 31 जनवरी, 2024 से 10 फरवरी, 2006 तक चला। इस सत्र की कई उपलब्धियाँ रहीं। एक तो इस सत्र में लोकसभा की कार्यवाही लगभग सुचारू रूप से चली और लोकसभा के अध्यक्ष महोदय माननीय श्री ओम बिरला ने बताया कि इस सत्र में लोकसभा में लगभग 148 प्रतिशत कार्य किया गया। इस सत्र में राष्ट्रपति के अभिभाषण पर विस्तृत चर्चा हुई तथा वित्त वर्ष 2024-2025 का अंतरिम बजट पास करने के साथ-साथ कुछ विधेयक भी पारित किए गए जिनमें से एक उल्लेखनीय विधेयक जो पारित किया गया, वह था 'लोक परीक्षा (अनुचित साधनों का निवारण) विधेयक, 2024'। इस विधेयक का मुख्य उद्देश्य लोक परीक्षा प्रणाली में अधिक पारदर्शिता, निष्पक्षता और विश्वसनीयता लाने के लिए लोक परीक्षाओं में प्रयुक्त अनुचित साधनों पर रोक लगाना है। इस विधेयक को कैबिनेट की मंजूरी पहले ही मिल गई थी। केंद्रीय मंत्री डॉ जितेंद्र सिंह ने इस विधेयक को 5 फरवरी, 2024 को लोकसभा में पेश किया और इस पर लगभग सभी दलों के नेताओं ने अपने-अपने विचार रखें और लोकसभा में यह पारित हो गया। इसी विधेयक को 9 फरवरी, 2024 को राज्यसभा में प्रस्तुत किया गया और वहाँ भी यह पारित हो गया। तत्पश्चात, दोनों सदनों द्वारा पारित इस विधेयक को राष्ट्रपति की सहमति के लिए भेज दिया गया। महामहिम राष्ट्रपति श्रीमती द्रोपदी मुर्मू ने इस पर अपनी सहमति 12 फरवरी, 2024 को दे दी और इसी के साथ यह विधेयक अधिनियम बन गया है।

लोकसभा में लोक परीक्षा विधेयक को प्रतिस्थापित करते हुए डॉ. जितेंद्र कुमार ने कहा कि लोक परीक्षा विधेयक के माध्यम से लोक परीक्षाओं में पारदर्शिता, निष्पक्षता और विश्वसनीयता को बढ़ाना है और यह सुनिश्चित करना है कि युवा अपने भविष्य के बारे में विश्वस्त महसूस करें और उसकी कड़ी मेहनत को पुरस्कृत किया जाए।

पिछले कुछ वर्षों में देश के अनेक राज्यों विशेष रूप से राजस्थान, बिहार, मध्य प्रदेश में लोक परीक्षाओं में अपनाए गए अनुचित साधनों के कारण या तो कई लोक परीक्षाओं को रद्द करना पड़ा अथवा उनका परिणाम रोक देना पड़ा जिससे लाखों उम्मीदवारों को बहुत नुकसान उठाना पड़ा और इसके कारण उन में भारी आक्रोश के कारण कई बार देश में प्रदर्शन भी किए गए। इसलिए इस विधेयक को लाया गया है। अगर लोक परीक्षाओं में अनुचित साधनों का प्रभावी रूप से निवारण न किया गया तो देश के लाखों युवाओं के भविष्य पर विपरीत प्रभाव पड़ेगा।

कई मामलों में देखा गया है कि संगठित समूह और माफिया तत्त्व ऐसी परीक्षाओं में पहुँच बनाकर उनमें गड़बड़ी करते हैं ऐसे तत्त्वों पर लगाम लगाने के लिए कोई प्रत्यक्ष क़ानून भी नहीं है। अतः इस क़ानून के माध्यम से ऐसे तत्त्वों के विरुद्ध कठोर कार्रवाई करने की दृष्टि से यह क़ानून लाया जा रहा है। इस अधिनियम के अध्ययन से इसके उद्देश्य स्पष्ट हो जाते हैं जो इस प्रकार है --

1. लोक परीक्षा प्रणालियों की पारदर्शिता, निष्पक्षता और विश्वसनीयता को बढ़ाना।
2. युवाओं को उनके भविष्य के बारे में आश्वस्त करना तथा उनकी कड़ी मेहनत को मान्यता देना।
3. इस क़ानून के माध्यम से ऐसे व्यक्तियों, संगठित समूहों या संस्थानों को रोकना है जो अपने लाभ के लिए लोक परीक्षा प्रणालियों पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाले अनुचित व्यवहार में संलग्न हैं।
4. इस केंद्रीय क़ानून की तर्ज पर राज्य सरकारें ऐसे क़ानून बना कर अपने यहाँ लागू कर सकती हैं।

देश में लोक सेवाओं में भर्ती की परीक्षाओं में प्रश्न पत्र लीक की कई घटनाएँ सामने आई हैं। अगर हम पिछले 5 वर्ष के आँकड़ों का अवलोकन करें तो पता चलेगा कि पिछले पांच वर्षों में 16 राज्यों में प्रश्न पत्र लीक होने की 48 घटनाएँ घटी हैं जिसके कारण 1.12 लाख भर्ती के पदों में बढ़ती गड़बड़ियों के कारण 1.51 करोड़ आवेदकों का जीवन प्रभावित हुआ क्योंकि प्रश्न पत्र लीक होने अथवा परीक्षाओं में अन्य गड़बड़ियों के कारण परीक्षाओं में या तो विलंब हुआ या उन्हें रद्द करना पड़ा। इस प्रकार लोक परीक्षाओं में हो रही गड़बड़ियों के अरोपियों के विरुद्ध कठोर कार्रवाई करने के लिए कठोर क़ानून भी नहीं था। लोक परीक्षा में पारदर्शिता लाने के लिए यह जो क़ानून बन गया है इसमें दंड और जुर्माना लगाने के कठोर प्रावधान किए गए हैं। इसमें व्यक्तियों, संगठित समूहों और संस्थाओं द्वारा लोक परीक्षाओं मे की जाने वाली गड़बड़ियों के लिए कठोर प्रावधान किए गए हैं।

इस क़ानून के कठोर प्रावधानों के संदर्भ में इस क़ानून की धारा 9 उल्लेखनीय एवं अवलोकन्नीय है इसके अंतर्गत किए जाने वाले अपराध गैर-जमानती, संज्ञेय और गैर-शमनिया है। इस सब का अर्थ यह है कि ऐसे अपराधों के आरोपियों को बिना वारंट के गिरफ्तार किया जा सकता है और वह जमानत के अधिकार के पात्र भी नहीं होंगे और न ही आपराधिक मुकदमों से बचने के लिए दोनों पक्ष आपस में समझौता भी कर सकते हैं। इस संदर्भ में गैर-जमानती, संज्ञेय और गैर-शमनीय जैसी विधिक शब्दावली के अर्थों को यहाँ समझ लेना चाहिए।

सबसे पहले हम जानना चाहेंगे कि 'संज्ञेय' अपराध क्या होते हैं? संज्ञेय अपराध गंभीर अपराध होते हैं और इसमें पुलिस बिना वारंट के आरोपी को गिरफ्तार कर सकती हैं जब कि गैर-संज्ञेय अपराधों में आरोपी की गिरफ्तारी के लिए न्यायालय की अनुमति जरूरी होती है। जहाँ तक गैर-शमनीय अपराधों का संबंध है, यह अपराध गंभीर अपराध होते हैं जिन्हें दोनों

पक्ष समझौते के माध्यम से नहीं निपटा सकतें है। उन्हें केवल रद्द किया जा सकता है। इसके पीछे कारण यह है कि ये अपराध इतने गंभीर और आपराधिक हैं कि इनमें आरोपियों को सजा से बचने की इजाजत नहीं दी जा सकती।

लोक परीक्षा (अनुचित साधनों का निवारण) अधिनियम, 2024 की धारा 2 (के) के अनुसार लोक परीक्षा की परिभाषा देते हुए कहा गया है कि इस क़ानून की अनुसूची में पांच लोक परीक्षा प्राधिकरण शामिल किए गये हैं जो इस क़ानून के दायरे में आएँगे। उनके नाम इस क़ानून से संलग्न अनुसूची में दिए गये हैं जो इस प्रकार है -- (1) लोक संघ सेवा आयोग, (2) कर्मचारी चयन आयोग, (3) रेलवे भर्ती बोर्ड, (4) बैंकिंग कार्मिक चयन संस्थान ,(5) राष्ट्रीय टेस्टिंग एजेंसी।

राष्ट्रीय टेस्टिंग एजेंसी JEE (Main), NEET UG, UGC-NET, Common University Entrance Test की लोक परीक्षाएँ आयोजित करती है। इसके अलावा, केंद्र सरकार के सभी मंत्रालयों, विभागों, संबंद्ध तथा अधीनस्थ कार्यालयों के कर्मचारियों की भर्ती भी इस क़ानून के अंतर्गत आती हैं। केंद्र सरकार, आवश्यक होने पर इस अनुसूची में नये प्राधिकरण भी जोड़ सकती है।

लोक परीक्षाओं में अनुचित साधन अपनाने वाले आरोपी को 3 से 5 वर्ष तक के कारावास का दंड दिया जा सकता है तथा 10 लाख रुपए तक का जुर्माना लगाया जा सकता है और जुर्माना न देने की स्थिति में भारतीय न्याय संहिता, 2023 की धाराओं के अंतर्गत अतिरिक्त कारावास का दंड तथा जुर्माना लगाया जा सकता है। इसी प्रकार, किसी सेवा प्रदाता द्वारा लोक परीक्षा से संबंधित की गई गड़बड़ी के लिए एक करोड रुपए तक का जुर्माना तथा 10 साल तक का कारावास का दंड दिया जा सकता है और परीक्षा में गड़बड़ी के कारण हुए नुकसान के भरपाई भी इन सेवा प्रदाताओं से ली जा सकती है और उनकी संपत्ति भी जब्त की जा सकती है।

उपर हमने देखा कि लोक परीक्षाओं में अनुचित साधनों से गड़बड़ी करने के आरोप पर आरोपियों को कठोर दंड देने के प्रावधान कर दिए गए हैं। अब देखना यह है कि इस क़ानून में किन-किन अनुचित साधनों को लिया गया है। इस क़ानून की धारा 3 में 15 कार्यो को सूचीबद्ध किया गया है जो आर्थिक लाभ के लिए या गलत लाभ के लिए लोक परीक्षाओं में अनुचित साधनों का उपयोग करने के बराबर हैं। संक्षेप में वह इस प्रकार हैं --

1. प्रश्न पत्र या उत्तर कुंजी या उसके हिस्से को लीक करना और प्रश्न पत्र या ऑप्टिकल मार्क रिकॉग्निशन (OMR) रिस्पॉन्स शीट को बिना अधिकार के अपने कब्जे में लेना।
2. लोक परीक्षा के दौरान किसी अनधिकृत व्यक्ति द्वारा प्रश्नों का समाधान प्रदान करना।
3. उम्मीदवारों की शॉर्ट-लिस्टिंग या किसी उम्मीदवार की योग्यता या रैंक को अंतिम रूप देने हेतु आवश्यक किसी भी दस्तावेज के साथ छेड़छाड़ करना।
4. कंप्यूटर नेटवर्क या कंप्यूटर सिस्टम के साथ छेड़छाड़, धोखाधड़ी या आर्थिक लाभ के लिए फर्जी वेबसाइट बनाना तथा फर्जी प्रवेश पत्र या ऑफर लेटर जारी करना।

लोक परीक्षा अधिनियम, 2024 के अंतर्गत पारित अपराधों के बारे में जहाँ तक जाँच का संबंध है, यह जाँच पड़ताल पुलिस के उपाधीक्षक अथवा पुलिस उपायुक्त से नीचे का कोई अधिकारी नहीं कर सकेगा अर्थात् अपराधों की गंभीरता को दृष्टिगत करते हुए इस संबंध में जाँच पड़ताल पुलिस के उच्च अधिकारी ही करेंगे। इन सब बातों के अलावा, इस क़ानून के अंतर्गत लोक परीक्षाओं पर एक उच्च स्तरीय राष्ट्रीय तकनीकी समिति का गठन किया जाएगा। यह समिति डिजिटल प्लेटफॉर्म को सुरक्षित करने के लिए प्रोटोकॉल विकसित करने पर ध्यान केंद्रित करेगी। यह सुव्यवस्थित सूचना प्रौद्योगिकी और सुरक्षा प्रणालियों को कार्यान्वित करने के लिए रणनीति तैयार करेगा तथा सूचना प्रौद्योगिकी तथा भौतिक बुनियादी ढाँचे दोनों के संबंध में राष्ट्रीय सेवा एवं मानक स्तर तैयार करेगी। दक्षता व विश्वसनीयता सुनिश्चित करने के लिए परीक्षाओं के संचालन हेतु इन मानकों का कार्यान्वन किया जाएगा।

इस प्रकार इस क़ानून का एक विहंगम अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि इसमें काफी कठोर प्रावधान किए गए हैं। लोक परीक्षाओं के बारे में लंबे समय से जिस तरह की बाधाएँ खड़ी जा रहीं हैं है जिस तरह से इन लोक परीक्षा प्रणालियों में भ्रष्टाचार का घुन लग चुका है, इसके बारे में बहुत पहले इस तरह का क़ानून आना चाहिए था। भारतीय जनता पार्टी की सरकार ने निचले स्तर के पदों पर भर्तियों में साक्षात्कार जैसी व्यवस्था समाप्त जैसे कई सुधार किए हैं और उसे उच्च पदों की भर्ती प्रक्रिया पर शुरू से ही ध्यान देना चाहिए था पर चलो देर आए, दुरस्त आए, पर कुछ तत्त्व इस क़ानून की इस आधार पर आलोचना कर रहे हैं कि इसमें क़ानूनी खामियाँ हो सकती हैं क्योंकि भ्रष्ट मानस क़ानून में खामियों में से बचने का रास्ता निकाल सकते हैं। एक बात और यह भी कहीं जा रही है कि सरकार ने इस क़ानून में एक तकनीकी समिति गठित करने का प्रावधान तो रखा है परंतु इस समिति का संरचनात्मक ढाँचा क्या हो, इस बारे में क़ानून में कुछ नहीं कहा है। इस संबंध में यह कहा जा सकता है कि अभी तो क़ानून बना ही है और अभी तो इसके कार्यान्वयन से पहले इसके नियम बनने होंगे, बीच में लोकसभा के आम चुनाव आ गये हैं जिसमें दो महीने के लिए सरकार भी उनमें व्यस्त रहेगी, नियम लागू होने में कुछ समय तक लग सकता है। अगर कोई इस क़ानून में कुछ खामियाँ रह जाएगी तो संसद संशोधन द्वारा उन्हें दूर कर सकती है तथा कुछ आयाम तो नियम आने से स्पष्ट हो जाएँगे।

इस संबंध में यह कहना हम जरूरी समझते हैं कि इस क़ानून के बारे में समाज में जागृति ला कर यह सुनिश्चित करना चाहिए कि लोक परीक्षाओं में अब भ्रष्टाचार पर अंकुश लगना चाहिए। भ्रष्टाचारी तत्वों को अब सतर्क हो जाना चाहिए कि अगर अब भी वह अपनी इन निंदनीय हरकतों से बाज नहीं आते तो उनकी खैर नहीं। वैसे। भी जो क़ानून बनाया जाता है, उसके प्रावधानों को गंभीरता से लागू किया जाना चाहिए।

❑

अंकिता पाल

भारतीय संविधान एवं कल्याणकारी राज्य

राज्य कार्यक्षेत्र के संबंध में 19वीं शताब्दी के बाद एक नवीन सिद्धांत का जन्म हुआ जिसे लोक-कल्याणकारी सिद्धांत (Theory of Welfare State) कहते है। लोक-कल्याणकारी राज्य में राज्य के ऊपर कुछ उत्तरदायित्व सौंपे जाते हैं, जिसका लक्ष्य नागरिक जीवन को सुखी, संपन्न तथा समृद्ध बनाना है। वर्तमान शताब्दी में कल्याणकारी राज्य की अवधारणा ने इसके कल्याणकारी स्वरूप में काफी परिवर्तन ला दिया है। आज कल्याणकारी राज्य की अवधरणा को विश्व के सभी देश प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष रूप से स्वीकार करते हैं। वर्तमान स्थिति यह है कि देश चाहे वो पूँजीवादी हो समाजवादी या साम्यवादी सभी अपने अपने लोक-कल्याणकारी स्वरूप को प्रस्तुत करने हेतु तर्क-वितर्क करते हैं परंतु हम लोक-कल्याणकारी राज्य उसे ही मान सकते है जो अधिकतम लोगों के अधिकतम हित के साथ सुख, सुविधा एवं समृद्धि का सृजन करता है।

लोक-कल्याणकारी राज्य का विचार नया नहीं है। प्राचीन भारत में 'रामराज्य' की जिस अवधारणा का उल्लेख मिलता है, वह लोक-कल्याण की भावना पर ही आधारित है। किंतु वर्तमान समय में जिस अर्थ विशेष में इस अवधारणा का प्रयोग किया जाता है, वह आधुनिक औद्योगीकरण की देन है। लोक-कल्याणकारी राज्य के अंतर्गत प्रत्येक व्यक्ति को स्वतंत्र रूप से सर्वांगीण विकास का अवसर प्रदान किया जाता है।

उन्नीसवीं शताब्दी में व्यक्तिवाद के विरोध में कल्याणकारी राज्य की अवधारणा का उदय हुआ। कल्याणकारी राज्य का मुख्य उद्देश्य लोगों को शोषण से मुक्त करके उनका कल्याण सुनिश्चित करना था। आज पूरे विश्व में उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण जैसी विचारधाराओं का प्रभाव बढ़ रहा है। लेकिन आज, राज्य अपने दायित्वों से पीछे हट रहा है और अपनी नीतियों में सामाजिक उद्देश्यों पर बाजार को प्राथमिकता दे रहा है। ऐसे समय में हाशिये के लोगों की स्थिति और भी दयनीय होती जा रही है साथ ही असमानता की खाई निरंतर नए सामाजिक असंतोषों को जन्म दे रही है ऐसी स्थिति में राज्य का एक कल्याणकारी स्वरूप आवश्यक हो जाता है, जो सामाजिक असंतोष को दूर कर सामाजिक न्याय की स्थापना कर सके। इसलिए, यह आवश्यक हो जाता है कि हम कल्याणकारी राज्य के बारे में विस्तार से जाने कि कैसे यह लोगों के अधिकतम कल्याण को सुनिश्चित करता है और सामाजिक असंतोष को सामाजिक रचनात्मकता में परिवर्तित करता है।

लोक कल्याणकारी राज्य का उदभव और विकास : लोक-कल्याणकारी राज्य की अवधारणा आधुनिक युग की धारणा नहीं है अपितु प्राचीन कल से समय समय पर सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक दोनों रूप में पाई जाती जाती है। राजा को प्रजा का पालक कहा जाता था। गाँधी जी ने जिस कल्याणकारी राज्य की कल्पना की थी वह लोक-कल्याणकारी राज्य का ही स्वपना था। मौर्य सम्राट अशोक द्वारा स्थापित राज्य व्यवस्था हो या यूनानी दार्शनिक प्लेटो तथा अरस्तु के विचारों का आदर्श राज्य हो। 19वीं शताब्दी तक पुलिस राज्य की अवधारणा थी। राज्य ने अपने को केवल क़ानून व्यवस्था तक सीमित रखा हुआ था। इसके बावजूद राज्यों ने व्यक्तियों के कल्याण के लिए काफी कुछ किया, जो किसी न किसी रूप में कल्याणकारी राज्य की उत्पति में सहायक साबित हुआ। नागरिकों के कल्याण संबंधी इंग्लैंड का गरीबी उन्मूलन क़ानून हो या फ्रांस में नेपोलियन के सामजिक हित संबंधी कार्य हो, जर्मनी में बिस्मार्क का बुढ़ापा तथा दुर्घटना संबंधी सामजिक बीमा योजना हो या भारत में सती प्रथा निषेध, बाल विवाह निषेध क़ानून, सामाजिक सुरक्षा, निशुल्क शिक्षा, वृद्धाश्रम, राष्ट्रीय स्वास्थय सेवा, रेलवे यातायात, खान, बैंकों का राष्ट्रीयकरण आदि सभी कल्याणकारी राज्य की संकल्पना प्रतिबिंबित करते है। वर्तमान केंद्र सरकार एवं विभिन्न राज्य सरकारों द्वारा चलाई जा रही योजनाएँ इस बात का प्रमाण हैं हम एक ऐसा कलयाणकारी राज्य बनाना चाहते हैं जहा सबको विकास का अवसर हो और सबका विकास हो सरकार द्वारा चलायी जा रही योजनाओं का लाभ सब तक पहुँच सके यह सुनुश्चित हो।

लोक कल्याणकारी राज्य की अवधारणा के उदय के कारण :

कल्याणकारी राज्य की धारणा के उदय के प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं --

1. व्यक्तिवाद के विरुद्ध प्रतिक्रिया

कल्याणकारी राज्य आदर्श व्यक्तिवाद के विरुद्ध एक प्रतिक्रिया है। इस सिद्धांत के अनुसार राज्य के कार्यक्षेत्र को सीमित कर दिया गया था और राज्य ने अहस्तक्षेप की नीति अपना ली थी। इससे औद्योगिक क्रांति के युग में मजदूरों की दशा दयनीय हो गई। कारखानों के पूँजीपति श्रम के अनुसार वेतन न देकर श्रमिकों का शोषण करते थे। राज्य पूँजीपतियों और मजदूरों के इन संबंधों में हस्तक्षेप नहीं करता था। अतः शनैः-शनैः ऐसी व्यक्तिवादी विचारधारा के विरुद्ध प्रतिक्रिया हुई। यह अनुभव किया गया कि मजदूरों की दशा सुधारने के लिए अहस्तक्षेप नीति का परित्याग कर राज्य को सक्रिय हस्तक्षेप करना चाहिए। सर्वप्रथम, इंग्लैंड में मजदूरों के हितों के लिए राज्य ने क़ानून बनाए और इस प्रकार राज्य की लोक-कल्याणकारी अवधारणा का सूत्रपात हुआ।

2. मार्क्सवादी साम्यवाद के प्रभाव का भय

कार्ल मार्क्स और ऐंजिल ने वर्ष 1848 में साम्यवादी घोषणा-पत्र प्रकाशित किया। वर्ष 1917 में लेनिन के नेतृत्व में सोवियत रूस में साम्यवादी क्रांति हुई तथा मार्क्स की विचारधारा

को ठोस आधार प्राप्त हुआ साम्यवाद के भय के कारण पाश्चात्य देश पूँजीवादी लोकतंत्रात्मक व्यवस्था में आमूलचूल परिवर्तन करने लगे और लोक-कल्याणकारी राज्य के सिद्धांत को अपनाने लगे।

3. लोकतांत्रिक समाजवाद की अवधारणा का प्रचलन

मार्क्सवादी साम्यवाद हिंसा और क्रांति के उपायों के माध्यम से सामाजिक परिवर्तन चाहते थे। परिणामस्वरूप लोकतांत्रिक समाजवाद की धारणा का उदय हुआ। यह धारणा शांतिपूर्ण और वैध उपायों द्वारा सामाजिक परिवर्तन करना चाहती है। इस विचारधारा के समर्थक राज्य को एक लोक-कल्याणकारी संस्था मानते हैं। यह धारणा राज्य की सहायता से समाजवाद की स्थापना करना चाहती है।

लोककल्याणकारी राज्य का अर्थ

लोक-कल्याणकारी राज्य वह राज्य है जिसमे शासन की शक्तियों का प्रयोग किसी वर्ग विशेष के हितों के लिए नहीं, अपितु संपूर्ण जनता के हितों के लिए किया जाता है। लोक-कल्याणकारी राज्य एक ऐसा राज्य होता है जो जनता के कल्याण के लिए कार्य करता है तथा जो अपने सभी नागरिकों को न्यूनतम जीवन-स्तर प्रदान करना अपना अनिवार्य उत्तरदायित्व समझता है। यद्यपि आज हर राज्य अपने लिए कल्याणकारी राज्य होने का दावा करता है लेकिन उन्नीसवीं शताब्दी के अंत तक राज्य पुलिस राज्य से अधिक नहीं थे जिनका मुख्य कार्य शांति एवं व्यवस्था बनाए रखना था। उस समय कल्याण कार्य व्यक्ति अथवा व्यक्ति समूहों का कार्य क्षेत्र माना जाता था।

इस अवधारणा के विपरीत यह धारणा विकसित हुई कि राज्य के कुछ और भी कर्त्तव्य तथा उत्तरदायित्व हैं यथा नागरिकों का अधिक से अधिक कल्याण इस बात की व्यवस्था करना कि उनके रहन-सहन तथा खान-पान का अच्छा स्तर रहे। उनके भौतिक, बौद्धिक तथा नैतिक विकास के समस्त साधन प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हों। उनकी तथा उनके बच्चों की शिक्षा का समूचित प्रबंध हो। लोक-कल्याणकारी राज्य आज इतना लोकप्रिय हो गया है कि अनेक विद्वानों ने इसके अर्थ को परिभाषित करने का प्रयत्न किया है।

टी.डब्लू. केंट के अनुसार, “कल्याणकारी राज्य वह राज्य है जो अपने नागरिकों को बड़े पैमाने पर सामाजिक सेवाएँ उपलब्ध कराता है।” इन समाज सेवाओं के अनेक रूप होते हैं। इनके अंतर्गत शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार तथा वृद्धावस्था में पेंशन आदि की व्यवस्था होती है। इनका मुख्य उद्देश्य नागरिकों को सभी प्रकार की सुरक्षा प्रदान करना होता है।”

हॉबमैन (Hobman) का विचार है कि कल्याणकारी राज्य साम्यवाद (पूर्ण राज्य नियंत्रण) तथा निरपेक्ष व्यक्तिवाद (न्यूनतम राज्य हस्तक्षेप) के मध्य समझौता है। दूसरे शब्दों में कल्याणकारी राज्य निजी उद्यम के लाभों को स्वीकार करते हुए जीविकोपार्जन की सुरक्षा प्रदान

करता है तथा इसके द्वारा राष्ट्रीय आय के पुनर्वितरण की व्यवस्था की जाती है। इस प्रकार कल्याण दया का विषय नहीं है बल्कि यह नागरिकों का अधिकार है।

डॉक्टर आशीर्वादन के शब्दों में लोक-कल्याणकारी राज्य से तात्पर्य ऐसे राज्य से है जिसमें अधिक-से-अधिक लोगों का कल्याण हो सके। डॉ. अब्राहम के अनुसार, ‘‘वह समाज जहाँ राज्य की शक्ति का प्रयोग निश्चयपूर्वक साधारण आर्थिक व्यवस्था को इस प्रकार परिवर्तित करने के लिए किया जाता है कि संपत्ति का अधिक-से-अधिक उचित वितरण हो सके, लोक-कल्याणकारी राज्य कहलाता है।”

इन परिभाषा से यह स्पष्ट है कि लोक-कल्याणकारी राज्य का उद्देश्य जनता के संपूर्ण विकास तथा सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक न्याय की स्थापना करते हुए अवसर तथा प्रतिष्ठा की समानता स्थापित करना है। यह व्यवस्था समाज आधारित व्यवस्था है जहाँ व्यक्ति नहीं बल्कि समाज लोकनीति के केंद्र में होता है।

लोक-कल्याणकारी राज्य की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं।

राज्य के कार्य क्षेत्र में वृद्धि : कल्याणकारी सिद्धांत व्यक्तिवादी विचार के विरुद्ध एक प्रतिक्रिया है और इस मान्यता पर आधारित है कि राज्य को वे सभी हितकारी कार्य करने चाहिए जिनके करने से व्यक्तिगत स्वतंत्रता कम या नष्ट नहीं होती।

राजनैतिक सुरक्षा का प्रबंध : ऐसी व्यवस्था में सभी व्यक्तियों में राजनीतिक शक्ति निहित होती है और वे अपने विवेकानुसार इस शक्ति का प्रयोग कर सकें। इस लक्ष्य की प्राप्ति हेतु निम्न तत्त्व आवश्यक हैं।

(i) प्रजातंत्रात्मक पद्धति : राजतंत्र, अधिनायक तंत्र या कुलीन तंत्र के अंतर्गत नागरिकों को कोई राजनीतिक अधिकार प्राप्त नहीं होते हैं। केवल लोकतंत्रात्मक शासन में ही नागरिकों को ये अधिकार प्राप्त हैं। अतः एक प्रजातंत्रीय शासन पद्धति वाला राज्य ही लोक-कल्याणकारी राज्य हो सकता है।

(ii) नागरिक स्वतंत्रताएँ : राजनीतिक सुरक्षा व शक्ति की कल्पना केवल तभी की जा सकती है जबकि नागरिक स्वतंत्रता का वातावरण हो अर्थात् नागरिकों को विचार की अभिव्यक्ति और राजनीतिक दलों के संगठन की स्वतंत्रता प्राप्त होनी चाहिए।

अंतर्राष्ट्रीय सहयोग को बढ़ावा देना

लोक-कल्याणकारी राज्य अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में सहयोग को बढ़ावा देना और शांति व विकास में योगदान देता है। लोक-कल्याणकारी राज्य ‘वसुधैव कुटुम्बकम्’ की धारणा पर आधारित विचार है।

सामजिक समानता की व्याख्या

धर्म, जाति, वर्ग व संप्रदाय का भेदभाव किए बिना व्यक्ति को व्यक्ति के रूप में महत्त्व प्रदान करना सामाजिक समानता का पर्याय है।

5) आर्थिक सुरक्षा का प्रबंध

लोक-कल्याणकारी राज्य का प्रमुख आधार आर्थिक सुरक्षा की व्यवस्था है। आर्थिक सुरक्षा के प्रबंध के लिए निम्न तत्त्वों क होना आवश्यक है --

(i) सभी को रोजगार के अवसर : ऐसे सभी व्यक्तियों को, जो शारीरिक व मानसिक दृष्टि से कार्य करने की क्षमता रखते हैं, राज्य के द्वारा उनकी योग्यतानुसार रोजगार के अवसर अवश्य ही उपलब्ध कराए जाने चाहिए। कार्य करने में असमर्थ व्यक्तियों को जीवनयापन के लिए राज्य द्वारा बेरोजगारी बीमे का प्रबंध होना चाहिए।

(ii) संपत्ति व आय का समान वितरण : आर्थिक सुरक्षा तभी स्थापित की जा सकती है जबकि समाज में आर्थिक समानता हो, ताकि कोई भी व्यक्ति अपने धन के आधार पर किसी का शोषण न कर सके। संपत्ति व आय का वितरण समान होना चाहिए।

(iii) न्यूनतम पारिश्रमिक का आश्वासन : प्रत्येक व्यक्ति को इतना वेतन अवश्य दिया जाना चाहिए जिससे वह अपनी अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके व न्यूनतम जीवन-स्तर के साथ जीवनयापन कर सके।

लोक कल्याणकारी राज्य के प्रमुख कार्य

लोक-कल्याणकारी राज्य के कार्य काफी व्यापक है। व्यक्तिवादी विचारक राज्य के कार्यों को दो वर्गों में बाँटते है एक राज्य के अनिवार्य कार्य एवं दूसरा राज्य के ऐच्छिक कार्य। लोक-कल्याणकारी राज्य के समर्थक विचारक इस वर्गीकरण मे विश्वास नहीं करते। वे जनहित मे किए जाने वाले सभी कार्यों को आवश्यक और अनिवार्य मानते है। इस दृष्टि से लोक-कल्याणकारी राज्य राज्य के निम्म प्रमुख कार्य हैं --

(1) **आंतरिक सुव्यवस्था और विदेशी आक्रमणों से रक्षा :** जब तक एक राज्य विदेशी आक्रमणों से अपनी भूमि और सम्मान की रक्षा करने की क्षमता नहीं रखता तथा आंतरिक शांति और सुव्यवस्था रखते हुए व्यक्तियों को जीवन की सुरक्षा व आश्वासन नहीं देता, उस समय तक वह राज्य कहलाने का ही अधिकारी नहीं है। इस कार्य को संपन्न करने के लिए राज्य सेना और पुलिस रखता है, सरकारी कर्मचारियों तथा न्याय की व्यवस्था करता है और इन कार्यों से संबंधित व्यय को पूरा करने दे लिए नागरिकों पर कर लगाता है।

(2) **कृषि, उद्योग तथा व्यापार का नियमन और विकास :** कल्याणकारी राज्य के दायित्व एक ऐसे राज्य के द्वारा ही पूरे किए जा सकते हैं जो आर्थिक दृष्टि से पर्याप्त संपन्न हों। अतः इस प्रकार के राज्य द्वारा कृषि, उद्योग तथा व्यापार के नियमन एवं विकास का कार्य किया जाना चाहिए। इसमें मुद्रा निर्माण, प्रामाणिक माप और तोल की व्यवस्था, व्यवसायों का नियमन, कृषकों को राजकोषीय सहायता, नहरों का निर्माण, बीज वितरण के लिए गोदाम खोलना और कृषि सुधार आदि सम्मिलित हैं। राज्य के द्वारा जंगल आदि प्राकृतिक साधनों और संपत्ति की रक्षा की जानी चाहिए और कृषि तथा उद्योगों के बीच संतुलन स्थापित किया जाना चाहिए।

(3) **आर्थिक सुरक्षा संबंधी कार्य** : लोक-कल्याणकारी राज्य का एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण कार्य आर्थिक सुरक्षा संबंधी होता है। आर्थिक सुरक्षा के अंतर्गत अनेक बातें सम्मिलित हैं, जिसमें सभी व्यक्तियों को रोजगार और अधिकतम समानता की स्थापना प्रमुख है। ऐसे सभी व्यक्तियों को, जो शारीरिक और मानसिक दृष्टि से कार्य करने की क्षमता रखते हैं, राज्य के द्वारा उन्हें उनकी योग्यता के अनुसार किसी-न-किसी प्रकार का कार्य अवश्य ही दिया जाना चाहिए। जो व्यक्ति किसी प्रकार का कार्य करने में असमर्थ है या राज्य जिन्हें कार्य प्रदान नहीं कर सका है, उनके लिए राज्य द्वारा जीवन-निर्वाह भत्ते की व्यवस्था की जानी चाहिए।

(4) **जनता के जीवन-स्तर को ऊँचा उठाना** : लोक-कल्याणकारी राज्य के द्वारा नागरिकों को न्यूनतम जीवन-स्तर की गारंटी दी जानी चाहिए। ऐसी व्यवस्था की जानी चाहिए कि नागरिकों को अपने आपको स्वस्थ बनाए रखने के लिए पर्याप्त भोजन, वस्त्र, निवास, शिक्षा और स्वास्थ्य की सामान्य सुविधाएँ अवश्य ही प्राप्त हों। इसके साथ ही राज्य के द्वारा नागरिकों के जीवन-स्तर को निरन्तर ऊँचा उठाने का प्रयत्न किया जाना चाहिए।

4. सार्वजनिक शिक्षा की व्यवस्था करना

यदि राज्य के नागरिक सुसंस्कृत व शिक्षित होगे तो राज्य भी मजबूत होगा। अतः राज्य को शिक्षा के विभिन्न साधन उपलब्ध कराने चाहिए तथा ऐसी व्यवस्था हो कि सभी को शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार व अवसर प्राप्त हो सके। लोक-कल्याणकारी राज्य का उद्देश्य व्यक्तियों के लिए उन सभी सुविधाओं की व्यवस्था करना होता है जो उनके व्यक्तित्व के विकास हेतु सहायक और आवश्यक हैं। इस प्रकार का राज्य शिक्षण संस्थाओं की स्थापना करता है और एक निश्चित स्तर तक शिक्षा को अनिवार्य तथा निःशुल्क किया जाता है। औद्योगिक तथा प्राविधिक शिक्षा की व्यवस्था भी राज्य द्वारा की जाती है।

(5) **स्वास्थ्य संबंधी कार्य** : इसी प्रकार लोक-कल्याणकारी राज्य द्वारा चिकित्सालयों, प्रसूतिगृहों आदि की स्थापना की जाती है, जिनका उपयोग जन साधारण निःशुल्क कर सकते हैं।

(6) **सार्वजनिक सुविधा संबंधी कार्य** : लोककल्याणकारी राज्य के द्वारा परिवहन, संचार, सिंचाई, बैंक, विद्युत, कृषि के नवीनतम उपकरण आदि की व्यवस्था से संबंधित सार्वजनिक सुविधा के कार्य भी किए जाते हैं। इन सुविधाओं के लिए राज्य के द्वारा उचित शुल्क भी वसूल किया जाता है और जो लाभ होता है, वह सार्वजनिक कोष में जाता है तथा उसका उपयोग भी स्वाभाविक रूप से अधिक सार्वजनिक सुविधाएँ प्राप्त करने के लिए ही किया जाता है।

(7) **समाज-सुधार** : कल्याणकारी राज्य का लक्ष्य व्यक्तियों का न केवल आर्थिक, अपितु सामाजिक कल्याण करना भी होता है। इस दृष्टि से राज्य के द्वारा मद्यपान, बाल-विवाह, छुआछूत, जाति व्यवस्था आदि परंपरागत सामाजिक कुरीतियों को दूर करने के उपाय किए जाने चाहिए।

(8) **आमोद-प्रमोद की सुविधाएँ** : जनता को स्वस्थ मनोरंजन की सुविधाएँ प्रदान करने के लिए राज्य के द्वारा सार्वजनिक उद्यानों, क्रीडा क्षेत्रों, सार्वजनिक तरणतालों सिनेमागृहों, रंगमंच और रेडियो आदि का प्रबंध करना चाहिए। लोक-कल्याणकारी राज्य की आलोचना।

(9) नागरिक स्वतंत्रता : राज्य को चाहिए कि वह अपने नागरिकों को विचार की अभिव्यक्ति, सम्मेलन, संगठन निर्माण, आने-जाने, बसने, व्यवसाय करने की पूर्ण स्वतंत्रता प्रदान करे। इससे कल्याणकारी राज्य की व्यवस्था का औचित्य सही होता है।

(10) स्वास्थ्य की व्यवस्था करना : रोगों की रोकथाम, टीकों की व्यवस्था, चलते-फिरते औषधालयों की व्यवस्था राज्य को करनी चाहिए। नशीले वस्तुओं की बिक्री पर रोक लगाना चाहिए और निर्धन लोगों की मदद करनी चाहिए।

(11) आंतरिक शांति एवं व्यवस्था की स्थापना करना : जब तक राज्य मे शांति व्यवस्था स्थापित नहीं होती, राज्य के नागरिक प्रगति नहीं कर सकते, उनका जीवन भी सुरक्षित नहीं रहेगा। शांति व्यवस्था के लिए क़ानूनों का बनाना, उनका पालन कराना तथा उल्लंघन करने वालों को दंडित करना राज्य का कार्य है। अपने इन कार्यो को भली प्रकार संपन्न करने के लिए राज्य सरकारी कर्मचारियों, न्यायालय, पुलिस आदि की व्यवस्था करता है।

(12) बाहरी आक्रमण से रक्षा करना : राज्य की और राज्य के नागरिकों की बाहरी आक्रमण से सुरक्षा करना राज्य का कार्य है। यदि राज्य बाहरी आक्रमण से रक्षा करने मे असमर्थ रहता है तब उसके परिणामस्वरूप उसका अस्तित्व ही समाप्त हो जाता है। अतः बाह्य आक्रमण से समुचित सुरक्षा आवश्यक है।

(13) समाज सुधार के कार्य करना : लोक-कल्याणकारी राज्य का लक्ष्य व्यक्तियों का न केवल आर्थिक वरन सामाजिक कल्याण भी होता है। इस दृष्टि से राज्य के द्वारा मद्यपान, बाल-विवाह, छुआछूत, जाति-व्यवस्था आदि परंपरा सामाजिक कुरीतियों को दूर करने के उपाय किए जाने चाहिए।

(14) आर्थिक सुरक्षा : राज्य को आर्थिक व्यवस्था में ऐसा सुधार करना चाहिए जिससे कि सभी नागरिकों के लिए गरिमापूर्ण जीवन यापन की दशाएँ एवं सुविधाएँ उपलब्ध हो सकें। सभी व्यक्तियों के लिए रोजगार की व्यवस्था की जाए।

(15) परिवार नियोजन संबंधी कार्य : राज्य को जनसंख्या सीमित करने का प्रयास करना चाहिए, जिससे वर्तमान जनसंख्या के जीवन स्तर को उन्नत किया जा सके। परिवार नियोजन कार्यक्रम का विस्तार करने के लिए लोगों की सुविधाएँ बढ़ाई जानी चाहिए।

लोक-कल्याणकारी राज्य की समस्याएँ

आधुनिक राज्य के अस्तित्व का आधार बस यही है कि वह नागरिकों की कितनी सेवा कर सकता हैं। राज्य लोक-कल्याण की भावना से ही कार्य करना चाहते हैं, किंतु उनके सामने कुछ ऐसी समस्याएँ हैं जिससे वे सफलतापूर्वक कल्याणकारी कार्य नहीं कर पाते। ऐसी ही कुछ समस्याएँ इस प्रकार हैं --

1. आर्थिक साधनों का अभाव : नागरिकों को अधिकतम सेवाएँ प्रदान करने के लिए प्रचुर आर्थिक साधनों की आवश्यकता होती हैं। अधिकांश राज्यों की आर्थिक स्थिति वर्तमान में दुर्बल हैं। अतः वे कुशलता से कल्याणकारी योजनाओं का क्रियान्वयन नहीं कर पाते।

2. नौकरशाही की समस्या : कल्याणकारी राज्य में अधिकांश कार्य सरकारी कर्मचारी करते हैं। जन कल्याण की अनेक महत्त्वपूर्ण योजनाओं को ये नौकरशाह असफल बना देते हैं।

3. वैचारिक संघर्ष की समस्या : वैचारिक दृष्टि से कल्याणकारी राज्य की धारणा व्यक्तिवाद तथा समाजवाद का मिश्रण हैं। दोनों विचारधाराओं में समन्वय स्थापित करके सन्तुलित मध्यम मार्ग पर चलना अत्यंत दुष्कर हैं।

लोक-कल्याणकारी राज्य की आलोचना

लोक-कल्याणकारी राज्य की आलोचना में निम्न तर्क दिए जाते हैं --

1. व्यक्ति की स्वतंत्रता का हनन : राज्य की प्रणाली द्वारा व्यक्ति की स्वतंत्रता का हनन होता है। राज्य बहुत-से कार्य केवल अपने ही नियंत्रण तथा तत्वावधान में करता है। ऐसी परिस्थितियों में राज्य की शक्ति में वृद्धि और व्यक्ति की स्वतंत्रता सीमित हो जाती है। राज्य की बाध्यकारी शक्ति का उपयोग बढ़ जाता है और उसी मात्रा में व्यक्ति की स्वतंत्रता का हनन होता है।

2. राज्य की बाध्यकारी शक्ति का प्रयोग : आलोचकों का मत है कि कल्याणकारी राज्य की आड़ में धनी वर्ग से कर के माध्यम से धन लेकर समाज में समानता स्थापित करने के लिए राज्य की बाध्यकारी शक्ति का प्रयोग किया जाता है जो उचित नीति नहीं है।

3. नौकरशाही की समस्या : लोक-कल्याणकारी राज्य के अंतर्गत अधिकांश कार्य नौकरशाही द्वारा किए जाते हैं। सरकार के कार्यों एवं दायित्वों में वृद्धि के कारण प्रशासन का ढाँचाँ बहुत विस्तृत हो जाता है, शासन की शक्ति सरकारी कर्मचारियों के हाथों में केन्द्रित हो जाती है जिससे नौकरशाही की निरंकुशता बढ़ने का भय रहता है। जन कल्याणकारी अनेक महत्त्वपूर्ण योजनाओं को ये नौकरशाह अपने स्वार्थों के कारण असफल बना देते हैं।

4. प्रेरणा का अभाव : लोक-कल्याणकारी राज्य द्वारा प्रदान की गई सेवाएँ सबको ही प्राप्त होती हैं ऐसे व्यक्तियों को भी जो स्वयं अपने संकट का निवारण करने की क्षमता रखते हैं। बहुत-से ऐसे व्यक्ति भी हैं जो आत्मनिर्भरता की आवश्यकता नहीं समझते हैं और राज्य पर आश्रित हो जाते हैं।

5. समग्रवादी शासन का भय : कल्याणकारी शासन में वस्तुतः जनतंत्र की आड़ में समग्रवादी प्रवृत्तियों का विकास होने लगता है ऐसा राज्य साम्राज्यवाद को बढ़ावा देकर निरंकुश राज्य की सत्ता स्थापित करता है।

6. खर्चीला शासन : कल्याणकारी राज्य पर्याप्त खर्चीला होता है, समस्त कार्य राज्य द्वारा निष्पादित किए जाते हैं। फलतः ज्यों-ज्यों राज्य का नियंत्रण बढ़ता है, त्यों-त्यों महँगाई और लागत भी बढ़ती जाती है।

7. उत्पादन में कमी : कल्याणकारी राज्य में सामान्य जन की भलाई के लिए राज्य को बहुत सारे कार्य करने पड़ते हैं। इसके लिए सरकार को धनी व्यक्तियों पर बड़े पैमाने पर कर

लगाने होते हैं। इससे धनी व्यक्ति हतोत्साहित होकर उत्पादन एवं विकास के प्रति उदासीन हो जाते हैं।

भारतीय संविधान में लोक-कल्याणकारी राज्य की संकल्पना : भारतीय संविधान के द्वारा भारत की एक लोक-कल्याणकारी राज्य के रूप में कल्पना की गई करता है जिसका प्रमाण भारतीय संविधान की उद्देशिका, मूल अधिकार एवं राज्य के नीति निर्देशक तत्व है। भारतीय संविधान के भाग 3 में सम्मिलित मूल अधिकार यह गारंटी प्रदान करते है कि सभी भारतीय नागरिक मूल अधिकारों एवं स्वतंत्रताओं का उपयोग कर सकेंगे। स्वतंत्र भारत के सामने अनेको समस्याएँ व चुनौतिया थी। इन्ही व्यापक समस्याओं और चुनौतियों को देखते देखते हुए सविधान निर्माताओं ने भारत को एक कल्याणकारी राज्य बनाने का निश्चय किया। भारतीय संविधान की प्रस्तावना में भारत को एक संपूर्ण प्रभुत्वसम्पन, समाजवादी पंथनिरपेक्ष, लोकतंत्रात्मक, गणराज्य बताया गया है। साथ ही भारत के लोगों के सामजिक, आर्थिक कल्याण के व्यापक प्रावधान किए गए हैं, जिन्हे मूल अधिकार एवं राज्यों के निति निर्देशक तत्वों के रूप में जानते है।

भारत : एक लोक-कल्याणकारी देश के रूप में

भारत की राजव्यवस्था को संचालित करने का सर्वप्रमुख स्रोत भारतीय संविधान है तथा भारतीय संविधान में अनेक ऐसे प्रावधान हैं जो भारत को लोक-कल्याणकारी राज्य के रूप में संदर्भित करते हैं। भारतीय संविधान की प्रस्तावना में सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक न्याय और स्वतंत्रता समानता जैसे आयाम की स्थापना इसे लोक-कल्याणकारी राज्य बनाती है।भारतीय संविधान के भाग 3 में वर्णित अनुच्छेद 14, 15, 16, 17 और 18 समानता के अधिकार से संबंधित हैं, जो लोक-कल्याणकारी राज्य का एक आयाम है।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 (a) में अनिवार्य शिक्षा का प्रावधान है जो कल्याणकारी राज्य की अवधारणा से प्रेरित है। इसी के साथ ही साथ अनुच्छेद 23 तथा 24 में वर्णित शोषण के विरुद्ध अधिकार भी लोक-कल्याण की भावना से ही प्रेरित है।भारतीय संविधान के भाग 4 राज्य के नीति निर्देशक तत्व में ऐसे कई उपबंध है जो लोक-कल्याणकारी राज्य की भावना को प्रदर्शित करते हैं यह उपबंध निम्न है -- समान कार्य के लिए समान वेतन, धन के संकेंद्रण से संरक्षण, राज्य द्वारा कतिपय मामलों में दी जाने वाली सहायता, प्रबंधन में श्रमिकों की भागीदारी, मातृत्व लाभ की अवधारणा, पूर्व बाल्यकाल की देखभालसंवैधानिक उपबंध के अतिरिक्त कार्यकारी योजनाओं यथा वृद्धा पेंशन, छात्रवृत्ति, शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009, नवीन शिक्षा नीति तथा नवीन स्वास्थ्य नीतिरोजगार गारंटी योजना, सामाजिक सुरक्षा बीमा, दुर्घटना बीमा योजना, पेंशन योजना, प्रधानमंत्री गरीब कल्याण अन्न योजना प्रधानमंत्री हेल्थ आईडी कार्ड, आयुष्मान भारत योजना के प्रावधान यह स्पष्ट करते हैं कि भारत लोक-कल्याणकारी राज्य है।यद्यपि भारत द्वारा 1991 में आर्थिक सुधारों को स्वीकार कर उदारीकरण, निजीकरण तथा वैश्वीकरण की तरफ

शेष पेज 22 पर...

सतीश चंद्र रस्तौगी

आचार समिति

सामान्यतः संसदीय समितियाँ, समाचार पत्रों व मीडिया में चर्चा की विषय-वस्तु नहीं बनतीं। पर हाल ही में सुश्री महुआ मोइत्रा प्रकरण के कारण लोक सभा की आचार समिति चर्चा का विषय बन गई। प्रस्तुत लेख में इस समिति के उद्‌भव, गठन, कार्य, शक्तियों आदि के बारे में जानकारी देने का प्रयास किया गया है।

संसद जैसी लोकतांत्रिक संस्थाओं की विश्वसनीयता, मुख्यतः इसके सदस्यों की अटल निष्ठा पर निर्भर है जो कि संसदीय लोक तंत्र की सफलता के लिए एक अनिवार्य शर्त है। संसद सदस्य के गरिमामयी पद के साथ, जनता की आकांक्षाओं पर खरा उतरने और संसदीय राजनीति में जनता के विश्वास को बनाए रखने की महत्त्वपूर्ण जिम्मेदारी जुड़ी हुई है। एक संसद सदस्य के रूप में सर्वोच्च परंपराओं को कायम रखने के लिए संसद सदस्यों से सभा के भीतर और बाहर आचरण के कतिपय मानक बनाए रखने की अपेक्षा की जाती है। यह एक सुस्थापित तथ्य है कि संसद सदस्यों का आचरण नियमों के विरुद्ध अथवा सभा की मर्यादा के लिए अपमानजनक या किसी रूप में उन मानकों के विपरीत नहीं होना चाहिए जो संसद अपने सदस्यों से बनाए रखने की अपेक्षा करती है। लोकतंत्र की सर्वोच्च संस्था, संसद के सदस्य के रूप में प्रत्येक संसद सदस्य की यह जिम्मेदारी बनती है कि वह सार्वजनिक जीवन में पारदर्शिता और ईमानदारी को बढ़ावा देने के लिए एक उदाहरण बने। इस उद्देश्य को बढ़ावा देने के लिए एक मूलभूत आवश्यकता यह है कि एक आदर्श व्यवस्था की स्थापना की जाए और आचार संहिता का कड़ाई से पालन किया जाए जिसमें संसद सदस्यों द्वारा संसदीय और सार्वजनिक दायित्वों का निर्वहन और संसद तथा उसके बाहर उनके व्यक्तिगत आचरण दोनों स्थितियों हेतु उनके व्यवहार और आचरण संबंधी व्यापक मानकों को विहित किया गया हो।

उपर्युक्त पृष्ठभूमि में अक्टूबर 1996 में नई दिल्ली में हुए पीठासीन अधिकारियों के सम्मेलन में एक संकल्प पारित किया गया था (पीठासीन सम्मेलन के सभापति लोक सभा अध्यक्ष होते हैं और देश की प्रत्येक विधान सभा / परिषद का अध्यक्ष / सभापति इसका सदस्य होता है)। इस संकल्प में विधायिका से एक आचार समिति के गठन करने की संभावना तलाश करने की अपेक्षा की गई थी।

इस संकल्प के परिणामस्वरूप राज्य सभा ने 20 जुलाई, 2000 को दस सदस्यों की आचार समिति का गठन किया।

लोक सभा में 16 मई, 2001 को अध्यक्ष द्वारा 15 सदस्यों की एक तदर्थ आचार समिति का गठन किया गया। सोलहवीं लोक सभा ने 12 अगस्त, 2015 को इस समिति को स्थायी समिति का दर्जा प्रदान किया।

प्रस्तुत लेख की विषय-वस्तु लोक सभा की आचार समिति तक ही सीमित है।

लोक सभा की आचार समिति में 15 सदस्य होते हैं जिनका नाम निर्देशन अध्यक्ष लोक सभा द्वारा किया जाता है। समिति के गठन के समय सदन में विभिन्न दलों की सदस्य संख्या को ध्यान में रखा जाता है और प्रयास किया जाता है कि यथा संभव हर दल को सदन में उसकी सदस्य संख्या के अनुपात में इस समिति में प्रतिनिधित्व करने का अवसर मिले।

समिति के सभापति की नियुक्ति अध्यक्ष, लोक सभा द्वारा समिति के सदस्यों के मध्य से की जाती हैं। समिति का कार्यकाल एक वर्ष होता है, समिति का कोई भी सदस्य निर्धारित प्रपत्र में समिति से अपने पद का त्याग कर सकता है। इस प्रकार रिक्त हुए स्थान को भरने के लिए नाम निर्देशित सदस्य समिति के शेष कार्यकाल तक ही समिति का सदस्य रहता है।

समिति की बैठक गठित करने के लिए समिति के कुल सदस्यों की संख्या के एक तिहाई सदस्यों को उपस्थिति आवश्यक होती है।

आचार समिति के कृत्य इस प्रकार हैं -- (1) अध्यक्ष द्वारा समिति को लोक सभा के किसी सदस्य के अनैतिक आचारण संबंधी सौंपी गई प्रत्येक शिकायत की जाँच करना और ऐसी सिफारिश करना जिन्हें वह उचित समझे; एवं (2) संसद सदस्यों के लिए आचार संहिता तैयार करना और समय-समय पर उसमें संशोधनों और परिवर्धनों का सुझाव देना।

समिति उसे भेजे गए प्रत्येक मामले की प्रारंभिक जाँच करती है और इस जाँच के परिप्रेक्ष्य में आगे की कार्यवाही करती है।

उल्लेखनीय है कि समिति की किसी बैठक में सभी प्रश्न उपस्थित तथा मतदान करने वाले सदस्यों के बहुमत से निर्धारित किए जाते हैं। किसी विषय पर मतों की बराबरी होने पर सभापति का दूसरा या निर्णायक मत होता है। समिति की सिफारिशें एक प्रतिवेदन के रूप में अध्यक्ष को प्रस्तुत की जाती हैं जो इन्हें सभा के पटल पर रखने का निर्देश दे सकेगा।

समिति अपने प्रतिवेदन में उस प्रक्रिया का भी उल्लेख करती है जो सभा द्वारा उसकी सिफारिशों को कार्य रूप देने के लिए अपनाई जाए।

समिति को वे सभी अधिकार यथा 'साक्ष्य आदि लेने का अधिकार' प्राप्त हैं जो लोक सभा की अन्य समितियों को प्राप्त हैं। समिति की बैठक की कार्यवाही गोपनीय होती है।

सदन समिति की सिफारिशों को यथावत स्वीकार कर सकता है, अस्वीकार कर सकता है अथवा संशोधनों के साथ स्वीकार कर सकता है, इस पूरी चर्चा के लिए आधा घंटे का समय दिया जाता है।

समिति के प्रतिवेदन पर विचार करने वाले प्रस्ताव को वही प्राथमिकता दी जाती है जो

विशेषाधिकार भंग संबंधी प्रश्न को दी जाती है। आशय यही है कि इस प्रस्ताव पर प्रश्नकाल के पश्चात् विचार किया जाता है।

संसदीय समितियों में यद्यपि विभिन्न दलों का प्रतिनिधित्व होता है तथापि वे दलगत राजनीति से ऊपर उठ कर कार्य करती हैं और उनसे अपेक्षा भी यही की जाती है कि वे विवेचनाधीन मामले की जाँच कर तथ्यों के प्रकाश में अपनी सुविचारित व निष्पक्ष सिफारिशें सदन को प्रस्तुत करें जिससे कि सदन को उन पर निर्णय लेने में कोई दिक्कत न पेश आए। समिति की सिफारिशें भविष्य के लिए मार्गदर्शक का कार्य करती हैं।

❑

संदर्भ

1. Practice and Procedure of Parliament by Kaul & Shakdher (7th edition)
2. लोक सभा के प्रक्रिया व कार्य संचालन नियम (16वाँ संस्करण)
3. लोक सभा अध्यक्ष के निदेश (9वाँ संस्करण)
4. संसदीय सारांश माला
5. Rules of Procedure and Conduct of Business in the Council of States (Rajya Sabha) (8th edition)

पृष्ठ 19 का शेष...

बढ़ने से कई आलोचकों ने यह कहा था कि भारत लोक-कल्याणकारी पथ से भटक चुका है और वर्तमान समय में एयर इंडिया, आईडीबीआई, इत्यादि सार्वजनिक उपक्रमओ के विनिवेश भी इसी बात का संकेत दे रहे हैं।

परंतु कोरोना महामारी के प्रभाव से निदान में सरकार के प्रयास के रूप में आत्मनिर्भर भारत योजना, श्रमिकों की स्थिति सुधार के लिए बनाए जाने वाले श्रमिक संहिता, कृषि में सुधार के लिए प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना, प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना इत्यादि में किया जाने वाला सार्वजनिक निवेश यह स्पष्ट करता है कि भारत लोक-कल्याणकारी राज्य के मार्ग से पथ भ्रमित नहीं हुआ है। बता दें कि भारत एक मिश्रित अर्थव्यवस्था का देश है जहाँ एक तरफ सभी को आर्थिक उन्नति प्राप्त करने का अवसर है वहीं दूसरी तरफ सुभेद्य वर्ग के लिए सरकार व्यवस्था करती है। इस प्रकार भारत में पूँजीवाद तथा समाजवाद दोनों के ही अच्छे गुणों को स्वीकार कर लोक-कल्याणकारी राज्य की अवधारणा को सुनिश्चित किया गया है।

❑

डॉ. एस.एस. दास एवं कीर्तिका सिंह

भारतीय न्याय संहिता 2023 का संक्षिप्त विश्लेषण

प्रथम विधि आयोग के गठन के साथ ही भारत में ब्रिटिश सरकार ने नई विधियों का संहिताकरण प्रारंभ किया था। प्रथम विधि आयोग की अध्यक्षता मैकाले ने की थी। इस आयोग के समक्ष तत्कालीन सरकार के अनुरूप व्यवस्था को स्थापित करने हेतु निश्चित एवं स्पष्ट विधि की आवश्यकता थी जो कि ब्रिटिश साम्राज्य के विरोध में न हो। इसी उद्देश्य को क्रियान्वित करने के लिए एवं भारत में पुलिस व्यवस्था एवं दंड विधि की स्थापना हेतु प्रथम विधि आयोग ने अपने सुझाव दिए जिसमें कुछ भारतीय व्यवस्थाओं के अनुरूप भी प्रावधानों का समन्वयन किया गया। अन्यथा जन सामान्य दंड विधि के विरुद्ध खड़ा हो जाता। भारतीय दंड संहिता, 1860 को इसी उद्देश्य की पूर्ति करने हेतु अधिनियमित किया गया। समय-समय पर विभिन्न संशोधनों के साथ भारतीय दंड संहिता, 1860 स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी अस्तित्व में बनी रही। 2023 में इस ब्रिटिश दंड विधि को नवीन भारतीय न्याय संहिता, 2023 के द्वारा स्थानांतरित कर दिया गया। सामान्य अवलोकन से प्रतीत होता है कि इसका संरचनात्मक रूप में ही परिवर्तन किया गया है। वैश्विक रूप से मान्य अपराध कृत्यों से संबंधित प्रावधानों में कोई परिवर्तन नहीं किया गया है।

भारत सरकार के अनुसार पुरानी विधि का उद्देश्य सरकार की सुरक्षा करना था। लेकिन नई विधियों का उद्देश्य जनता के अधिकारों की रक्षा करना और उन अधिकारों को प्राप्त करने में आने वाली बाधाओं को दूर करना है। स्वतंत्रता से पूर्व आपराधिक विधियों का उपयोग ब्रिटिश सरकार द्वारा अपने औपनिवेशिक हितों की रक्षा करने, लोगों और देश पर शासन और भारत पर अपना अधिकार और वर्चस्व बनाए रखने के लिए किया जाता था। हालाँकि दंड प्रक्रिया संहिता को मूलभूत रूप से कई बार परिवर्तित किया गया। परंतु दंड संहिता के मूल में कोई परिवर्तन नहीं किया गया था। ब्रिटिश सरकार द्वारा निर्मित सभी विधियों के विरुद्ध संवैधानिक सुरक्षा प्राप्त है।

वर्तमान भारतीय न्याय संहिता, 2023 एक प्रकार से ब्रिटिश साम्राज्य की छाया को समाप्त करने का प्रयास करती है, जो कि इसके शीर्षक से ही परिलक्षित होता है कि विधि का उद्देश्य मात्र न्याय की स्थापना है, उसका उद्देश्य व्यक्ति मात्र को दंडित करना नहीं है। वर्तमान विधि निर्माण के पक्ष में सरकार का कथन है कि उस काल में बनाई गई दंड विधि अब भारतीय समाज की वर्तमान गतिशीलता और आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व नहीं करते हैं। भारतीय न्याय संहिता,

2023 दंड के बजाए न्याय प्रदान करने की दिशा में क़ानून की प्रवृत्ति को बदलने काप्रयास करती है, औपनिवेशिक मानसिकता के निशान को हटाने के लिए एक प्रयास करती प्रतीत होती हैं।

भारतीय न्याय संहिता के उद्देश्य

भारतीय न्याय संहिता निम्न उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए अग्रसर होगी :--

1. विधि की प्रक्रिया को सरल बनाने का प्रयास करना एवं विधि व्यवस्था स्थापित करना।
2. विधियों को समसामयिक स्थिति के अनुरूप बनाने और जनसामान्य को त्वरित न्याय प्रदान करने पर ध्यान केन्द्रित करना।
3. अपराधों और दंड से संबंधित प्रावधानों को सुव्यवस्थित करना।
4. छोटे अपराधों के लिए दंड के रूप में सामुदायिक सेवा प्रदान करना। इसका समेकन भारतीय सांस्कृतिक परंपराओं के अनुरूप है जिसमें आत्म प्रताड़ना को भी दंड का एक प्रकार माना गया है।
5. महिलाओं एवं बालकों के विरुद्ध अपराधों का उपचार करने हेतु प्राथमिक कदम उठाए गए हैं।
6. राज्य के विरुद्ध अपराधों के निवारण हेतु एवं राष्ट्रीय अखंडता सुनिश्चित बनाए रखने हेतु वरीयता प्रदान की गई है।
7. कुछ विशिष्ट अपराधों को लिंग निरपेक्ष बना दिया गया है। लिंग की परिभाषा में उभय लिंग (transgender) को भी सम्मिलित कर लिया गया है।
8. सामयिक परिस्थितियों को देखते हुए संगठित अपराधों और आतंकवादी गतिविधियों की समस्या के निवारण हेतु आतंकवादी कृत्यों और संगठित अपराधों को नए अपराधों के रूप में निवारक दंड के साथ समेकित किया गया है।
9. सशस्त्र विद्रोह, विध्वंसक गतिविधियों, अलगाववादी गतिविधियों या भारत की संप्रभुता या एकता और अखंडता को खतरे में डालने वाले कार्य एवं लोपों पर एक नया अपराध समेकित कर के उसका निवारक दंड वर्णित किया गया है।
10. विभिन्न अपराधों की प्रतिकर या जुर्माने की राशि एवं कारावास अवधियों में भी परिवर्तन किया गया है।

नवीन भारतीय न्याय संहिता 2023 के आकर्षण

नवीन संहिता में उपर्युक्त उद्देश्यों के दृष्टिगत निम्नलिखित प्रावधानों का नवीन समेकन है --

1. उभय लिंग (transgender) शब्द का वर्णन पुरानी दंड संहिता में नहीं था लेकिन इस शब्द का वर्णन लिंग की नई परिभाषा धारा 2(10) में जोड़ा गया है।
2. दंड के विभिन्न प्रकारों में सामुदायिक सेवा को धारा 4 के द्वारा समेकित किया गया है हालाँकि न्यायपालिका द्वारा इस पर निर्णय दिए जा चुके हैं।
3. नवीन संहिता की धारा 48 के द्वारा भारत से बाहर किसी व्यक्ति द्वारा अन्य को उकसाने को अपराध के रूप में स्वीकार किया गया है ताकि विदेश में स्थित व्यक्ति पर मुकदमा चलाया जा सके।

4. नई संहिता की धारा 95 किसी बच्चे को यौन शोषण या पॉर्नोग्राफी के लिए काम पर रखना, नियोजित करना, संलग्न करना या उपयोग करना, को अपराध घोषित करती है। इस खंड को बढ़ते हुए बाल्य यौन शोषण को ध्यान में रखकर समेकित किया गया है।
5. नई संहिता में हत्या से संबंधित धारा 103(2) में मॉबलिंचिंग अर्थात् जब पाँच या अधिक व्यक्तियों का एक समूह मिलकर नस्ल, जाति या समुदाय, लिंग, जन्म स्थान, भाषा के आधार पर हत्या करता है, व्यक्तिगत विश्वास या किसी अन्य आधार पर, ऐसे समूह के प्रत्येक सदस्य को मृत्यु दंड या आजीवन कारावास की सज़ा दी जाएगी और जुर्माने के लिए भी उत्तरदायी होगा।
6. हिट एंड रन के मामले बढ़ते जा रहे हैं एवं उच्च वर्ग अपने को आसानी से बचा लेता था क्योंकि उपेक्षा से कारित मृत्यु हेतु पुरानी दंड संहिता की धारा 304A में अल्प दंड का प्रावधान था। इसलिए धारा 106(2) न्याय संहिता ने नया प्रावधान जोड़ा है। इसमें दंड प्रावधान को 10 वर्ष तक कर दिया गया है।
7. नई शताब्दी में बढ़ते हुए संगठित अपराधों के दृष्टिगत एक नई धारा 111 जोड़ी गई है। धारा 111 संगठित अपराध को परिभाषित करती हैं एवं दंड का प्रावधान देती है। इसी क्रम में धारा 112 लघु संगठित अपराध का वर्णन करती है।
8. धारा 113 आतंकवादी कृत्यों को परिभाषित करती हैं एवं दंड का प्रावधान देती है।
9. नवीन भारतीय न्याय संहिता में धारा 152 के अंतर्गत भारत की संप्रभुता, एकता और अखंडता को खतरे में डालने वाले कृत्यों से संबंधित प्रावधान का समेकन किया गया है।
10. नई संहिता की धारा 2(39) सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम, 2000 का समेकन करती है। यदि कोई संदर्भ न्याय संहिता में परिभाषित नहीं किया गया है परंतु सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम में परिभाषित है, तो उसका वही अर्थ लिया जाएगा।

पुरानी दंड संहिता के प्रावधानों का पूर्ण निरस्तीकरण

पुरानी भारतीय दंड संहिता के अधिकांश प्रावधानों को नई संरचनात्मक व्यवस्था के साथ न्याय संहिता में समेकित किया गया है, परंतु कुछ प्रावधानों को पूर्ण रूप से निरस्त किया गया है जो कि निम्न हैं --

1. पुरानी संहिता की धारा 50-धारा (Section) शब्द को परिभाषित करती थी। इसको पूर्ण रूप से समाप्त कर दिया गया। इसका तात्पर्य यह हो सकता है कि अब हम 'धारा' शब्द की जगह अन्य नामावली यथा खंड, अनुच्छेद, नियम इत्यादि प्रयोग कर सकते हैं, अन्यथा नहीं इस संबंध में कोई स्पष्टीकरण नहीं है।
2. भारतीय दंड संहिता की धारा 53। को पूर्ण रूप से निरस्त कर दिया गया है जो कि कारावास दंड के स्थानांतरण के संदर्भ में स्पष्टीकरण करती थी एवं संशोधन अधिनियम, 1955 द्वारा जोड़ी गई थी।

3. धारा 56, भारतीय दंड संहिता को भी पूर्ण रूप से निरस्त कर दिया गया जो कि ब्रिटिश एवं अमेरिकी नागरिकों के लिए विशेष प्रावधान करती थी। परंतु इस धारा को भारतीय दंड संहिता संशोधन अधिनियम, 1949 द्वारा पहले ही निरस्त कर दिया जा चुका था।
4. धारा 58 एवं 59 को भी संशोधन अधिनियम 1955 द्वारा निरस्त किया जा चुका था। इसलिए नई संहिता में भी यथास्थिति बना के रखी गई है।
5. धारा 61 एवं 62, भारतीय दंड संहिता की जो कि संपत्ति के जब्तीकरण से संबंधित थी, को निरस्त कर दिया गया। इन दोनों धाराओं को ब्रिटिश राज्य में ही संशोधन अधिनियम 1921 द्वारा निरस्त कर दिया गया था।
6. भारतीय दंड संहिता की धारा 138। जो कि भारतीय मैरीन सेवा से संबंधित थी, नवीन न्याय संहिता में निरस्त कर दिया गया है। इसको पूर्व में ही संशोधन अधिनियम 1934 द्वारा निरस्त किया जा चुका था। इस संदर्भ में भी नवीन संहिता यथास्थिति बनाती है।
7. भारतीय दंड संहिता की धारा 153।। को नवीन न्याय संहिता द्वारा निरस्त कर दिया गया है। इस धारा में जान-बूझकर किसी जुलूस इत्यादि में हथियार का प्रयोग करना एवं उसे धारित करने को प्रतिबंधित किया गया था। इस धारा को निरस्त करने की जगह यदि शस्त्र शब्द को परिभाषित कर दिया जाता, तो ज़्यादा उचित होता। इस धारा को समाप्त करना एक दूरदर्शी निर्णय नहीं कहा जा सकता।
8. भारतीय दंडसंहिताकी धारा 161 से 165। को नवीन न्याय संहिता निरस्त करती है। इस धारा को पहले ही भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 द्वारा निरस्त किया जा चुका था।
9. भारतीय दंड संहिता की धारा 216B जो कि बंदरगाह शब्द को परिभाषित करती थी, को निरस्त कर दिया गया। इसे भी पूर्व में ही संशोधन अधिनियम, 1942 द्वारा निरस्त किया जा चुका था।
10. धारा 226 जो कि पूर्व में ही संशोधन अधिनियम, 1955 द्वारा समाप्त की जा चुकी थी, नवीन संहिता भी उस स्थिति को स्वीकार करती है।
11. भारतीय दंड संहिता की धारा 236, 227, 238 को भी न्याय संहिता द्वारा निरस्त किया गया है जो कि सिक्कों के कूटकरण एवं उनके आयात निर्यात के संदर्भ के प्रावधान वर्णित करती थी। ध्यान देने योग्य बात है कि सिक्कों का प्रचलन अभी समाप्त नहीं हुआ है।
12. भारतीय दंड संहिता धारा 264 से 267 को निरस्त कर दिया गया है। इन धाराओं में वजन एवं माप से संबंधित अपराधों का वर्णन था। इसकी महत्ता को वर्तमान समय में भी इनकार नहीं किया जा सकता है। लेकिन विशिष्ट प्रावधान की उपस्थिति के कारण यहाँ से हटाना अधिक हानिकारक नहीं होगा।
13. भारतीय दंड संहिता की धारा 310 एवं 311 को निरस्त कर दिया गया। ये दोनों धाराएँ ठग शब्दों को परिभाषित एवं दंड का प्रावधान वर्णित करती थी।

14. भारतीय दंड संहिता की धारा 377 को भी न्याय संहिता द्वारा निरस्त कर दिया गया है। इस धारा को न्यायपालिका पूर्व में ही असंवैधानिक करार दे दिया गया था। न्याय संहिता से निरस्तीकरण का अभिप्राय यह है कि अब इसे पुनः न्यायपालिका द्वारा पुनर्जीवित नहीं किया जा सकता।
15. भारतीय दंड संहिता की धारा 478 एवं 480 जो कि ट्रेडमार्क की परिभाषा एवं दंड से संदर्भित थी। न्याय संहिता द्वारा उन्हें निरस्त कर दिया गया। इन धाराओं को संशोधन अधिनियम 1958 द्वारा पूर्व में ही निरस्त किया जा चुका था।
16. भारतीय दंड संहिता की धारा 490 एवं 492 को न्याय संहिता द्वारा निरस्त कर दिया गया जो कि यात्र या समुद्री यात्रओं के दौरान सेवा अनुबंध के भंग से संबंधित थी। इन धाराओं को भी संशोधन अधिनियम 1925 द्वारा समाप्त किया जा चुका था।
17. भारतीय दंड संहिता की धारा 497 को न्याय संहिता द्वारा निरस्त कर दिया गया है जो कि व्याभिचार से संबंधित थी। इस धारा को न्यायपालिका ने पहले ही असंवैधानिक घोषित कर दिया है।

अंततः संक्षिप्त समीक्षा के रूप में कहा जा सकता है कि इस नवीन भारतीय न्याय संहिता 2023 ने पुरानी दंड संहिता 1860 का स्थान अवश्य ग्रहण किया है परंतु कोई भी क्रांतिकारी परिवर्तन नहीं किए हैं। उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि न्याय संहिता ने पूर्व में किए गए संशोधनों को अंगीकृत किया है।तथैव कालान्तर में दिए गए न्यायपालिका के निर्णयों को भी अंगीकार किया है। भारतीय दंड संहिता 1860 की धारा 303 जिसे न्यायपालिका ने असंवैधानिक घोषित कर दिया था, उसे संशोधित करके पुनः अंगीकृत किया गया है। इसका सामान्य तात्पर्य यह है कि धारा 303, भारतीय दंड संहिता अब धारा 104, भारतीय न्याय संहिता के रूप में पुनर्जीवित हो गई है। भारतीय दंड संहिता रूढ़ि के रूप में भारतीय समाज में विशेषकर विधिक समुदाय में व्याप्त हो गई थी। इसका संरचनात्मक परिवर्तन आने वाले दिनों में जटिलता लाएगा या कि सहजता, यह तो विधि समुदाय के अनुभव का अध्ययन करने पर ही कहा जा सकता है। आने वाला समय ही इसकी उपयोगिता को सिद्ध करेगा। परंतु इतना तो अवश्य कहा जा सकता है कि इसने ऐसे कोई संशोधन नहीं किए हैं या ऐसे कोई नवीन विधिक सिद्धांत प्रतिपादिक नहीं किए हैं, जिससे आपराधिक प्रशासनिक विधि में कुछ नयापन आने वाला है।

❑

संदर्भ

1. भारतीय दंड संहिता, 1860
2. भारतीय न्याय संहिता, 2023

सन्तोष खन्ना

यह भारत देश है मेरा! संदर्भ भारत का संविधान

वर्ष 1965 में एक में मशहूर फिल्म आई थी जिसका नाम था 'सिकंदर-ए-आजम', उस फिल्म का देशभक्ति की भावनाओं से ओत-प्रोत एक गीत था, "जहाँ डाल-डाल पर सोने की चिड़ियाँ करतीं हैं बसेरा, वह भारत देश है मेरा।" हालाँकि यह फिल्म सिकंदर की कहानी से आरंभ होती है परंतु भारत के लिए इसका अधिक महत्त्व है इसमें सम्राट पुरु अर्थात् पोरस से संबंधित गाथा के कारण। सिकंदर-पोरस युद्ध में पोरस का बेटा शहीद हो जाता है और पोरस को बंदी बना लिया जाता है। बंदी के रूप में सम्राट पोरस के पराक्रमी वार्तालाप से सिकंदर प्रभावित हो मित्रता की पेशकश करता है। बाद में सिकंदर भारत से वापस प्रस्थान कर जाता है।

इसी फिल्म में 'जहाँ डाल डाल पर सोने की चिड़ियाँ करतीं हैं बसेरा / वह भारत देश है मेरा' गीत पोरस के माध्यम से भारत दर्शन कराने का सुंदर प्रयास है। इस कालजयी गीत की रचना प्रसिद्ध गीतकार राजेंद्र कृष्ण ने की है और संगीत निर्देशक रवि बहल और इसकी लाजवाब प्रस्तुति की है स्वर सम्राट मोहम्मद रफी ने। लगभग छः दशक पुराना यह गीत जब भी बजता है कौन भारतीय होगा, जिसका मन, प्राण और आत्मा देशभक्ति की भावना से ओत-प्रोत न हो जाता हो। यहीं नहीं, इस गीत के प्रारंभ में जो गुरु -- स्तोतम मोहम्मद रफी ने अपनी बुलंद और आत्मा को सम्मोहित करने वाले स्वर में प्रस्तुत किया है, वह भी सबको आध्यात्मिक रूप से आह्लादित करता है :

'गुरुर्ब्रम्हा गुरुर्विष्णु; गुरुर्देवो महेश्वरः गुरु साक्षात परब्रह्मा तस्मै गरवे नमः।।' "यह गुरुस्रोत स्कंद पुराण के गुरु गीता अध्याय में है और जिसका अर्थ है कि गुरु ही ब्रह्मा है, गुरु ही विष्णु हैं और गुरु ही शिव शंकर है, गुरु साक्षात परब्रह्म है और मेरा उनके चरणों में प्रणाम है।" संस्कृत में गुरु का अर्थ है अंधेरे से उजाले की राह दिखाने वाला। मोहम्मद रफी की आवाज़ में इस गुरु स्त्रोतम की पावन और उदात्त गूँजायमान स्वर लहरियाँ जब धरती और आकाश के प्रांगण के समूचे परिवेश का उन्मेष कर रही होती हैं कि यह गीत अपने संपूर्ण माधुर्य के साथ समां बाँधना आरंभ कर देता है :

''जहाँ डाल-डाल पर सोने की चिड़ियाँ करती हैं बसेरा / वहीं भारत देश है मेरा। जहाँ सत्य, अहिंसा का पग पग लगता डेरा/वहीं भारत देश है मेरा।''

इस समूचे गीत को सुन कर हर हदय तंत्री का नाद भी चारों दिशाओं में गूँज उठता है, “यह भारत देश है मेरा, यह भारत देश है मेरा।” इस गीत में गूँज रहे ‘भारत’ शब्द के कारण ही मैंने अपने भारत देश के लिए यह भूमिका बाँधी है। भारत देश हमारा सर्वस्व है, हमारी आन, बान और शान है, हमारी अस्मिता और हमारी पहचान है। इस जैसा अनमोल शब्द विश्व की किसी अन्य भाषा में नहीं हो सकता। इसी के लिए हमारे ऋषियों मुनियों ने गाया है, “जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।” अर्थात् माता और मातृभूमि स्वर्ग भी बढ़ कर है। इसी जन्मभूमि के लिए अनेकानेक संतानों ने अपना जीवन इस पर न्योछावर कर दिया और भविष्य में भी भारत देश की संतान उसकी अखंडता और सुरक्षा के लिए सर्वोच्च बलिदान देती रहें गी।

भारत एक बहुत ही पुरातन और उदात्त संस्कृति संपन्न देश है। इसी के लिए अल्लामा इकबाल ने लिखा था, “कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी/

सदियों रहा है दुश्मन दौरे जहाँ हमारा
सारे जहाँ से अच्छा हिंदुस्तान हमारा।’’

भारत के लिए हिंदुस्तान शब्द का इस्तेमाल भी सदियों से किया जा रहा है पर इसके लिए ‘इंडिया’ शब्द का इस्तेमाल भारत पर अंग्रेज़ी साम्राज्य के दौरान शुरू हुआ और हमने अंग्रेज़ी साम्राज्य की पराधीनता से मुक्ति के बाद भी अधिकांशतः इंडिया शब्द ही अपना रखा है क्योंकि हम गुलामी की मानसिकता से बाहर आना ही नहीं चाहते। यहाँ तक कि जब स्वतंत्र भारत के लिए संविधान का निर्माण किया जा रहा था तो उस संविधान में जैसे ही उसकी उद्देशिका के बाद संविधान का मुख्य भाग शुरू होता है तो उसके पहले अनुच्छेद की पहली पंक्ति ही इंडिया शब्द से ही प्रारंभ होती है। संविधान की पहली पंक्ति में भारत को परिभाषित करते हुए कहा गया है ‘India that is Bharat shall be a Union of States.’ इंडिया अर्थात् भारत राज्यों का संघ है। चूँकि भारत के संविधान की रचना अपनी किसी भारतीय भाषा में नहीं, आक्रांताओं की भाषा अंग्रेज़ी में की गई है, इसलिए उसमें जहाँ जहाँ भी भारत का उल्लेख आया है, वहाँ ‘इंडिया’ शब्द का ही इस्तेमाल किया गया है। ‘भारत’ शब्द का भारत के इस बृहत संविधान में ले दे कर पहली पंक्ति में केवल एक बार ही उल्लेख है। अब भारत के संविधान को बने और लागू हुए लगभग पचहत्तर वर्ष होने को हैं, परंतु गुलामी की मानसिकता की प्रतीक इस व्यवस्था को बदलने का कोई विशेष प्रयास नहीं किया गया।

जब भारत का यह संविधान बनाया जा रहा था तो उस संविधान सभा के अध्यक्ष थे प्रसिद्ध स्वतंत्रता सेनानी डॉ. राजेंद्र प्रसाद, जिनकी उत्कट इच्छा थी कि जब संविधान बन रहा था उसे अंग्रेज़ी भाषा के साथ-साथ हिंदी भाषा में भी बनाया जाए। उन्होंने उसके लिए एक समिति भी बनाई थी परंतु भारत का संविधान उस समय हिंदी में नहीं बन सका था और उस संविधान सभा से भारत का संविधान ‘कांस्टीट्यूशन ऑफ इंडिया’ 19 नवंबर, 1949 को केवल अंग्रेज़ी में ही पारित हो सका, हिंदी में नहीं, बाद में इस संविधान का ‘भारत का संविधान “शीर्षक से हिंदी

में अनुवाद तो किया गया परंतु वर्षों तक उसका प्राधिकृत पाठ संसद से पारित हो कर नहीं आ सका, जिसका एक परिणाम यह हुआ कि देश का शासन चलाने के लिए अंग्रेज़ी में लिखित 'कांस्टीट्यूशन ऑफ इंडिया' का ही प्रयोग किया जाता रहा। वह तो बहुत बाद में वर्ष 1987 में भारत की संसद से 'कांस्टीट्यूशन ऑफ इंडिया' से हिंदी में अनुवाद कर भारत के संविधान को हिंदी में प्राधिकृत करवाया गया। किंतु 'कंस्टीट्यूशन ऑफ इंडिया' में अंग्रेज़ी भाषा के प्रयोग को ले कर कई संवैधानिक प्रावधानों के कारण भारत के शासन का कामकाज अंग्रेज़ी में ही किया जाता रहा है और अभी भी देश की राजभाषा हिंदी में शासन का कामकाज कम ही किया जाता है और अंग्रेज़ी का धड़ल्ले से प्रयोग हो रहा है। चूँकि 'कांस्टीट्यूशन ऑफ इंडिया' में देश की न्याय संस्थाओं विशेष रूप से उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालय में कार्यवाही अनिवार्यता अंग्रेज़ी में करने के प्रावधान कर दिए गए थे, अब जब देश अपनी स्वतंत्रता की सत्तरवीं वर्षगांठ मना रहा है, देश की जनता को देश की न्याय संस्थाओं से न्याय अपनी भाषा अथवा भाषाओं में नहीं बल्कि अंग्रेज़ी भाषा में ही मिल रहा है और इस तरह हम भारतवासी अंग्रेज़ी भाषा के रुप में गुलामी के इस प्रतीक को ढोने को अभिशप्त हैं और इस मायने में देश की जनता को कहीं भी सच्चे अर्थों में न्याय नहीं मिल पाता, बस जिसके बस में है अर्थात् तथाकथित पैसे वाले, रसूखदार या बाहुबली न्याय खरीद लेते हैं या अप्रत्यक्ष रूप से हथिया लेते हैं और आम जनता न केवल न्याय से वंचित हैं बल्कि अंग्रेज़ी भाषा में लिखित मूल अधिकार तथा समानता के अधिकार से, गरिमापूर्ण जीवन जीने के अधिकार से वंचित हैं चाहे हम कितना ही इस बात का दम भरते रहे कि भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र है। जब तक हम गुलामी के प्रतीकों से स्वयं को मुक्त नहीं करते, तब तक हम सही मायनों में स्वतंत्र होने का दम नहीं भर सकते हैं। यह बात शत प्रतिशत सही है कि किसी देश की संस्कृति उसकी अपनी भाषा अथवा भाषाओं के माध्यम से ही पीढ़ी-दर-पीढ़ी में अंतरित होती है। आप जिस भाषा के माध्यम से बचपन से आरंभ होकर छात्र जीवन में शिक्षा ग्रहण करते हैं, उसी भाषा की संस्कृति आपके रोम रोम में, आपके संस्कारों में, आपकी जीवन शैली में व्याप्त होती रहेगी। चूँकि स्वतंत्र भारत की पीढ़ी-दर-पीढ़ी शिक्षा अब तक अंग्रेज़ी भाषा में होती आई है और देश का संविधान भी अंग्रेज़ी भाषा में निर्मित हुआ, शासन का कामकाज अंग्रेज़ी में किया जाता रहा है, न्याय आपको अंग्रेज़ी भाषा में दिया जा रहा है शिक्षा आप अंग्रेज़ी माध्यम से ग्रहण करते आ रहे हैं, आपने देश को भारत के रूप में नहीं, इंडिया के रूप में जाना है, स्वाभाविक है कि आपके संस्कारों में, आपकी जीवनशैली में भारतीयता कम हो, पश्चिम संस्कृति अधिक हो। आजकल हम अपने उपर ओढ़ी हुई पश्चिमी संस्कृति के दुष्प्रभाव को देखते हैं फिर भी पश्चिमी अपसंस्कृति के जाल में ऐसे संलिप्त हैं कि न तो हम अपने पारिवारिक मूल्यों को निभा रहे हैं और न ही समाज में एक सुदृढ़ व्यवस्था कर पा रहे हैं।

आज कल हम भारतीय गाहे बगाहे अपनी प्राचीन संस्कृति की बात कर रहे हैं परंतु उसे अपनाने के लिए हमें अपने देश की जड़ों की ओर लौटना होगा। उसके लिए सबसे पहले

अपनी स्वदेशी भाषाओं की ओर लौटना होगा। उसके लिए हमें सबसे पहले भारत के सबसे बड़े क़ानून अर्थात् भारत के संविधान में देश के नाम की परिभाषा को बदलना होगा जो वर्तमान में देश को परिभाषित करती है 'इंडिया दैट एस भारत'। इसे इंडिया से बदल कर भारत करना होगा।

भारत के संविधान का निर्माण वर्ष 1946 से ले कर 1949 के बीच के कार्यकाल में हुआ था। जब संविधान सभा में संविधान में देश को परिभाषित करने के विषय पर चर्चा हो रही थी तो संविधान सभा के उस समय के कुछ राष्ट्रवादी सदस्यों ने 'इंडिया' शब्द के इस्तेमाल पर अपना विरोध व्यक्त किया था परंतु उस समय के विदेश पलट अंग्रेज़ी भक्त सद्स्यों ने इसे स्वीकार नहीं किया। जब संविधान सभा में कुछ सदस्यों ने देश का नाम इंडिया रखे जाने का विरोध किया, उनकी आवाज़ नक्कारखाने में तूती की आवाज़ की तरह दब गई। संविधान सभा के सदस्य एचवी कामथ ने कहा था कि संविधान सभा को देश के नाम को गंभीरता से लेना चाहिए। उनका विचार था कि मुख्य नाम भारत ही होना चाहिए। संविधान सभा के एक और सदस्य सेठ गोविंद दास ने वेद, पुराण, महाभारत का हवाला देकर यह सिद्ध करने की कोशिश की कि इस देश को हमेशा से भारत के नाम से ही जाना जाता रहा है। उन्होंने 'इंडिया दैट इज भारत' के स्थान पर 'भारत नोन एज इंडिया इन फारेन कंट्रीज' का प्रयोग करने की सलाह भी दी थी। दस्तावेज़ बताते हैं कि इस मुद्दे पर कमलापति त्रिपाठी और डा. भीमराव आंबेडकर के बीच नोंकझोंक भी हुई थी। आखिरकार, एचवी कामथ के प्रस्ताव पर वोटिंग हुई। उनके समर्थन में 38 सदस्य थे, जबकि 51 ने उसका विरोध किया। परिणामस्वरूप उनका प्रस्ताव पास नहीं हो पाया और 'इंडिया दैट इज़ भारत' को ही स्वीकार कर लिया गया और तब से हम इंडिया शब्द को अधिक जानते हैं और भारत को कम।

संविधान सभा में भारत के संविधान में 'भारत' नाम रखने के बारे में बहुत लंबी चर्चा हुई, उस सबका उल्लेख यहाँ संभव नहीं, उस बहस के एक दो उदाहरण देना यहाँ पर्याप्त होगा जिससे पता चलता है कि विश्व में सभी देशों का एक ही नाम हैं और हमने देश के सर्वोच्च क़ानून अर्थात् भारत के संविधान में देश के दो नाम रखे परंतु उसमें भी इंडिया को प्रथम स्थान पर रखा है।

संविधान सभा के एक माननीय सदस्य ने अपने स्वतंत्र हो रहे देश का नाम केवल भारत रखने की वकालत करते हुए कहा --

''हमें वास्तव में अपने देश को ऐसा नाम देना चाहिए जो हमारे इतिहास और संस्कृति के अनुरूप हो। यह बहुत ख़ुशी की बात है कि हम आज अपने देश का नाम भारत रख रहे हैं। मैंने पहले भी कई बार कहा है कि यदि हम इस मामले में सही निर्णय पर नहीं पहुँचे तो इस देश की जनता स्वशासन का महत्त्व नहीं समझ पाएगी।"

भारत के संविधान में केवल भारत नामकरण के बारे में तर्क देते हुए एक माननीय सदस्य का यह कहना था :

''यह भी कहा गया जब कोई देश गुलामी में होता है तो वह अपनी आत्मा को खो देता है। हज़ार साल की गुलामी के दौरान हमारे देश ने भी अपना सब कुछ खो दिया। हमने अपनी संस्कृति खो दी, हमने अपना इतिहास खो दिया, हमने अपनी प्रतिष्ठा खो दी और वास्तव में हमने अपना रूप और नाम खो दिया। आज हज़ार वर्ष तक परतंत्र रहने के बाद यह स्वतंत्र देश अपना नाम पुनः प्राप्त करेगा और हमें आशा है कि यह अपना खोया हुआ नाम प्राप्त करेगा। अपनी आंतरिक चेतना पुनः प्राप्त करेगा।''

एक अन्य माननीय सदस्य हर गोविंद पंत का भी दृष्टिकोण था :

''जहाँ तक 'इंडिया' शब्द का सवाल है ऐसा लगता है कि सदस्यों को और वास्तव में मैं भी यह समझने में असफल हूँ कि हमारा इस शब्द के प्रति इतना लगाव क्यों है? हमें यह जानना चाहिए कि हमें यह नाम हमारे देश को विदेशियों द्वारा दिया गया था जो इस भूमि की समृद्धि के बारे में सुनकर इसके प्रति आकर्षित हुए थे और हमारे देश की संपत्ति हासिल करने के लिए इन्होंने हमसे हमारे स्वतंत्रता छीन ली। यदि हम इंडिया नाम से चिपके रहते हैं तो इससे यह पता तो चलेगा कि हमें इसमें कोई शर्म नहीं है जो विदेशी शासकों द्वारा हम पर नाम थोपा था हम उससे मुक्त होने के लिए तैयार नहीं हैं। मुझे यह समझ नहीं आ रहा कि हम इस शब्द 'इंडिया' को स्वीकार क्यों कर रहे हैं?

संविधान लागू होने के बाद भी समय समय पर यह आवाज़ उठती रही है कि संविधान से इंडिया शब्द हटा कर केवल भारत रहने दिया जाए। वर्ष 2020 में उच्चतम न्यायालय में इस आशय की याचिका दायर की गई थी तो उच्चतम न्यायालय की मुख्य न्यायाधीश एसए बोबडे की अध्यक्षता वाली तीन-सदस्यीय बेंच ने याचिका को ख़ारिज करते हुए इस मामले में दख़ल देने से इन्कार कर दिया। अदालत ने कहा कि संविधान में पहले से ही भारत का जिक्र है। संविधान में लिखा है 'इंडिया दैट इज भारत।' उच्चतम न्यायालय ने अपने फैसले में यह भी कहा कि इस याचिका को संबंधित मंत्रालय में भेजा जाना चाहिए और याचिकाकर्ता सरकार के सामने अपनी माँग रख सकते हैं। यह कोई नई बात नहीं है कई देश अपना नाम बदल चुके हैं।''

इसी वर्ष, संसद के मानसून सत्र में 27 जुलाई, 2023 को राज्य सभा में भारतीय जनता पार्टी के एक सांसद श्री नरेश बंसल ने विशेष उल्लेख के माध्यम से यह मुद्दा उठाया। उन्होंने कहा कि भारत के संविधान के अनुच्छेद एक में देश का नाम इंडिया दैट इज भारत हटा कर केवल भारत होना चाहिए। आजादी के अमृतकाल में अंग्रेज़ी गुलामी के प्रतीक को हटा कर इस पावन पुण्य धरा का नाम केवल भारत किया जाना चाहिए।

संविधान निर्माण काल से ऐसी माँग होती आई है। इस माँग को देर सवेर पूरा करना ही होगा। उल्लेखनीय यह भी है कि भारत के संविधान में केवल यहीं गुलामी का प्रतीक नहीं हैं जिसका संशोधन किया जाना चाहिए, इससे अधिक भी ऐसे कुछ और प्रावधान हैं जिनकी ओर आम तौर पर किसी का ध्यान नहीं गया है। सबसे बड़ा प्रावधान जिसका संशोधन जरूरी

है वह है देश के शासन की भाषा केवल भारत भाषा ही हो, अंग्रेज़ी अब बिल्कुल नहीं रहनी चाहिए। दूसरा, देश की जनता को उसकी भाषा में न्याय दिलाने के लिए देश की विधि और न्याय भाषा अब अंग्रेज़ी नहीं रहनी चाहिए। ऐसा तभी संभव है जब अनुच्छेद 348 में संशोधन किया जाए। यहीं वह प्रावधान है जो देश की जनता को उसकी भाषा में न्याय दिलाने में बहुत बड़ी बाधा बना है। ऐसा प्रतीत होता है कि अभी तक किसी राजनीतिक दल का इस ओर ध्यान ही नहीं गया है। क्या कोई इस बात पर शोध करके बताएगा कि कभी किसी राजनीतिक दल ने अपने चुनाव घोषणापत्र में कभी यह मुद्दा रखा है? वैसे भी हमारे देश में जितने भी सरकारी और गैर-सरकारी विधि स्कूल और विश्वविद्यालय हैं उसमें क़ानून की शिक्षा अनिवार्यता अंग्रेज़ी में दी जाती है और इस तरह जो वकील और न्यायाधीश तैयार होते हैं वह अंग्रेज़ी में तैयार होते हैं। मानो वह स्वयं को इंग्लैंड अमरीका के लिए तैयार कर रहे होते हैं। भारत के संविधान का अनुच्छेद 348 सबसे बड़ा औपनिवेशिक मानसिक गुलामी का प्रतीक है। उसमें तत्काल प्रभाव से संशोधन होना चाहिए। यह तभी संभव होगा जब इसके लिए देश की जनता आवाज़ उठायेगी।

वैसे भारत के बारे में यह जान लिया भी आवश्यक है प्राचीनकाल से भारतभूमि के अलग-अलग नाम रहे हैं। मसलन जंबूद्वीप, भारत खंड, हिमवर्ष, अजनाभवर्ष, भारतवर्ष, आर्यावर्त, हिंद, हिंदुस्तान और इंडिया. मगर इनमें भारत सबसे ज्यादा लोकमान्य और प्रचलित रहा है। इस के बाद देश हिंदूस्थान के नाम से भी जाना जाता है। इसके बारे में एक प्राचीन मंत्र देखिए :

''हिमालयात् समारभ्य यावत् इंदु सरोवरम्।
तं देवनिर्मितं देशं हिंदुस्थान प्रचक्षते'' -- (बृहस्पति आगम)

अर्थात् हिमालय से प्रारंभ होकर इंदु सरोवर (हिंद महासागर) तक यह देव निर्मित देश हिंदुस्थान कहलाता है।

'हिमालय' संस्कृत के 'हिम' तथा 'आलय' दो शब्दों से मिलकर बना है जिसका शाब्दिक अर्थ 'बर्फ का घर' होता है। हिमालय को भारत का ताज कहा जाता है। हिमालय की क्रोड़ में कई देश हैं पर मुख्यतः भारत का बहुत बड़ा भाग हिमालय की क्रोड़ में है। जहाँ तक हिंदूस्थान शब्द का संबंध है दुर्भाग्यवश बहुत सारे लोग इस नाम को भी अब संप्रदायिक बताने लगे हैं।

❑

सौम्या पांडेय

दूरदर्शन से ओ.टी.टी. तक का सफर : रोमांचक या घातक? कितनी पहुँच है क़ानून की इन तक?

जब से भारत देश तकनीकी रूप से समृद्ध होना शुरू हुआ है तबसे आम आदमी के रहन-सहन, बोलचाल व व्यवहार में भी बहुत परिवर्तन आ गया है। कहना गलत नहीं होगा कि व्यक्ति के विकास व उनके व्यक्तित्व के निर्माण में दूरदर्शन का भी बहुत बड़ा व महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। एक समय था जब सिनेमाघरों से निकलकर फिल्में दूरदर्शन के द्वारा घरों घर तक पहुँचने लगीं थीं तब सिनेमा से परहेज करने वाला वर्ग भी समाचार व शैक्षिक कार्यक्रमों के द्वारा दूरदर्शन के मोह में ऐसा उलझा की टी.वी लोगों के लिए परिवार के एक सदस्य के समान हो गया था। उस दौर में टी.वी. होना अपने आप में बड़ी उपलब्धि भी होती थी, जिन लोगों के घरों में टी.वी. नहीं होता था उनके लिए पड़ोसी अपने घरों के द्वार खोल देते थे व कई बार केवल पास-पड़ोस ही नहीं बल्कि पूरा मोहल्ला उनके घर पर जमा होता था जिसके पास टी.वी होता था। यह भाईचारे की एक मिसाल भी थी, जिसमें धर्म व जाति भी गौण थी। देखा जाए तो वो बीसवीं सदी का स्वर्णिम काल था जिसकी यादें आज भी उस दौर की पीढ़ी के दिलों में जिंदा है।

उसके बाद आया टी. वी. पर दूरदर्शन से इतर अलग-अलग चैनलों का दौर, जिसने टेली सीरीज की अनेकों श्रृंखलाएँ दर्शकों के सामने डाल दीं, जिसके द्वारा साधारण व मध्यम वर्गीय समाज के दर्शक उच्च वर्ग के रहन-सहन एवं खुलेपन से रूबरू हुए व कुछ-कुछ आधुनिकता को अपनाने लगे। आज का दौर इन सबसे हटकर ओ.टी.टी. का हो गया है जहाँ समाज का वो चेहरा दिखाया जा रहा है जो विदेशी खुलेपन को भी मात दे रहा है। क्या ये दौर भारतीय समाज के लिए अच्छा है? क्या इस प्रकार के टी. वी. कार्यक्रम समाज को दिशा दे रहे हैं या उनका पतन कर रहें हैं, यह जानने की आवश्यकता है।

सर्वप्रथम, यह जानने की कोशिश करते हैं कि ओ.टी.टी. है क्या? बताना चाहूँगी कि ओ.टी.टी. का पूरा अर्थ (फुल फार्म) है (ओवर द टॉप), और जैसा कि इसके नाम से विदित होता है यह बिना किसी आधिकारिक नियंत्रण के पूरी गति से आपत्तिजनक भाषा व दृश्यों से युक्त चलचित्रों को प्रसारित कर रहा है। वर्तमान में नेटफ्लिक्स, हॉट स्टार, डिजनी, अमेजॉन प्राइम इत्यादि के पास ओ.टी.टी. के प्रसारण का अधिकार है। इन प्लेटफॉर्म के द्वारा बिना

किसी रोक-टोक के किसी भी प्रकार की पिक्चरें या सीरीज आप टी.वी., लैपटॉप, यहाँ तक कि मोबाइल पर भी देख सकते हैं।

आजकल ओ.टी.टी. के नाम पर जो भी टी. वी. पर दिखाया जा रहा है वो समाज का आइना नहीं है लेकिन नई पीढ़ी को भ्रष्ट व पतित करने के लिए पर्याप्त हैं। इनमे से कई सीरीज तो ऐसी हैं जिनमें न केवल खुलापन, चारित्रिक पतन की पराकाष्ठा पार हो चुकी है बल्कि भाषा के स्तर पर निम्नता के सारे कीर्तिमान भी ध्वस्त हो चुके हैं। यह ऐसी सामग्री दर्शकों तक पहुँचा रहे हैं जिन्हें परिवार के साथ तो दूर अकेले में भी देखना आसान नहीं है। इनकी झलक (ट्रेलर) देखकर किशोर वर्ग इनकी ओर आकर्षित होता है व देखने का प्रयत्न करता है क्योंकि यह सर्व सुलभ हैं तो आसानी से मोबाईल की पहुँच में भी हैं लेकिन यह सीरीज युवाओं व किशोरों को न केवल भ्रमित कर रही हैं बल्कि एक ऐसे समाज के निर्माण की ओर अग्रसर हैं जो दिशाहीन व पथ भ्रष्ट होता जा रहा है। यह आने वाले समय में समाज के लिए घातक सिद्ध हो सकता है क्योंकि यदि इन पर लगाम नहीं लगाई गई तो नई पीढ़ी के भविष्य के लिए खतरा हो सकता है।

इस प्लेटफार्म को नियंत्रित करने के लिए सन् 2020 में भारत के सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय ने कई दिशानिर्देश जारी किए थे, जिसमें एक स्व-नियमन कोड की सुविधा थी व शिकायतों के निवारण के लिए एक तंत्र भी तैयार किया गया था लेकिन फिर भी इसका कोई विशेष प्रभाव नहीं हुआ क्योंकि आलोचक इसे स्वतंत्रता व अभिव्यक्ति की आजादी का हनन बताने लगे जिसके मिश्रित परिणाम हुए जो की पक्ष में कम एवं विपक्ष में ज्यादा थे। फिर भी इन प्लेटफॉर्म्स की निगरानी के लिए भारत सरकार ने इंटरनेट और मोबाइल एसोसिएशन ऑफ इंडिया (IAMAI) को ओ.टी. टी. पर प्रसारित सामग्री को स्व-विनियमित करने एवं उनकी पूरी निगरानी करने की पावर (छूट) भी प्रदान की है, जिसके परिणामस्वरूप, IAMAI ने स्व-विनियमन के लिए एक डिजिटल सामग्री शिकायत परिषद (DCCC) की स्थापना की थी जिसके द्वारा ओ.टी.टी. प्लेटफार्मों सहित इस प्रकार के लगभग सभी स्ट्रीमिंग प्लेटफार्मों पर सामग्री की स्ट्रीमिंग करी जा सके जिसके अधिकार क्रमशः इस प्रकार हैं कि (DCCC) को इन प्लेटफॉर्म्स की सभी शिकायतों की जाँच के अधिकार प्राप्त हैं व जब भी ये (IAMAI) द्वारा जारी दिशानिर्देशों का उल्लंघन करते पाए गए तो उनके विरुद्ध कड़ी कार्रवाई का भी प्रावधान है। भारत में अब (IAMAI) के अतिरिक्त कुछ अन्य संगठन भी डिजिटल सामग्री की निगरानी और विनियमन का कार्य कर रहे हैं जिनमें इंडियन ब्रॉडकास्टिंग फाउंडेशन (IBF) और न्यूज ब्रॉडकास्टर्स एसोसिएशन (NBA) आदि प्रमुख हैं। ये सभी संगठन यह सुनिश्चित करते हैं, कि डिजिटल सामग्री के द्वारा नैतिकता, सामाजिक जिम्मेदारी और जवाबदेही के बनाए गए मानकों व स्थापित दिशानिर्देशों और विनियमों का हनन न हो। इसके बावजूद भी, यह सेंसरशिप क़ानूनी चुनौतियों का सामना कर रही है व इसका अनुपालन कठिन है क्योंकि भारतीय संविधान

के अनुसार अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के नाम पर पाए गए अधिकार का उपयोग कर यह चैनल्स अनैतिक सामग्री परोस रहे हैं व क़ानून के दाँव-पेंच में बच जाते हैं।

जब दूरदर्शन का दौर शुरू हुआ था तो कार्यक्रम सरकारी निगरानी में बनते थे, उनमें शिक्षा व संदेश होता था, उच्च चरित्र निर्माण का स्वरूप होता था। बच्चों के लिए भी अलग कार्यक्रम थे लेकिन ऐसा कुछ भी दृश्य-श्रव्य नहीं था जिससे बच्चों या किशोरों के मस्तिष्क पर बुरा प्रभाव पड़े। बच्चों के लिए जहाँ मोगली, अंकल क्रूज, टॉम और जेरी की दुनिया थी तो किशोरों के लिए ही-मैन, स्पाईडर मैन, कच्ची धूप, बाबा जी का बाइसकोप, अप्पू और पप्पू थे। सारा परिवार मिलकर बड़ों व बच्चों के कार्यक्रम एक साथ बैठकर देखता था। तेरह पन्ने, मिट्टी के रंग, रजनी, घर घर में चर्चा के विषय थे। चौपाल, शैक्षिक कार्यक्रम और आँगनबाड़ी पुरुषों व महिलाओं के प्रिय कार्यक्रम थे। चित्रहार व रंगोली के रंग तो लोग आज भी भूले नहीं हैं। रामायण ने तो ट्रेनें तक रुकवा दीं थीं तो महाभारत ने श्रीमद्‌भगवत गीता के सार को जन-जन तक पहुँचाया। वो दौर परिवार व समाज को जोड़ने का दौर था। लोग मिलजुल चाय की चुस्कियों के मध्य टी.वी. कार्यक्रमों का आनंद लेते थे। रविवार की पिक्चर व क्रिकेट, फुटबाल, हॉकी के मैच पूरे देश को एक जुट कर देते थे। वह युग ही अलग था। लेकिन आजकल के बच्चे क्या उस दौर को महसूस कर सकते हैं? निःसंदेह नहीं!! क्योंकि स्तरहीन कार्यक्रमों की भरमार के चलते टी.वी. अब परिवारों से दूर हो चुका है। छोटे बॉक्स वाले डिब्बे की जगह बड़ी-बड़ी स्क्रीन्स ने ले ली है मगर परिवार सिकुड़ गए हैं। अब न बच्चे बड़ों के साथ कार्यक्रम देख सकते हैं न ही बड़े कोई चैनल आसानी से लगाते हैं क्योंकि ऐसा कार्यक्रम ढूढ़ना बहुत मुश्किल है जो पूरा परिवार एक साथ बैठकर देख सके व किसी को भी कोई संकोच न हो। यह वाकई विचारणीय स्थिति है।

इस गंभीर विषय पर यह आलेख लिखने का विचार इसलिए भी आया जब एक समाचार की हेडलाइन (शीर्ष पंक्ति) ने ध्यान आकर्षित किया। उसमें लिखा था कि हालिया रिलीज हुई मूवी 'एनिमल' को देखने के बाद फिल्म अभिनेता बॉबी देओल की माँ ने उन्हें इस प्रकार के हिंसक रोल करने के लिए मना कर दिया। तब सहसा यह विचार आया कि आखिर उन्होंने ऐसा क्यों कहा? तब मूवी के रिव्यूज पढ़ने पर पता चला कि यह क्रूर व हिंसक वृत्ति को पोषित करने वाली वर्चस्व प्रधान-पुरुष की मानसिकता को दर्शाती हुई ऐसी मूवी है जिसने हिंसा, क्रूरता, आदि की अभी तक की सभी सीमाओं को तोड़ दिया है। इसकी तुलना पुरानी कई पिक्चरों से भी हुई जिसमें गालियों व हिंसा की भरमार थी। यह तो एक उदाहरण मात्र है जिसने यह सोचने पर मजबूर कर दिया कि ऐसी ही न जाने कितनी ही पिक्चरे व वृहद सीरीज तो ओ.टी.टी. के माध्यम से लोगों के घरों तक पहुँच चुकी हैं जिनके ट्रेलर न चाहते हुए भी अपरिपक्व मस्तिष्क में कहीं गहरे पैठ बनाते जा रहें हैं, जो निःसंदेह युवा के लिए घातक हैं।

जब दूरदर्शन का युग था तो परिवार व समाज एक होकर उसके प्रसारित कार्यक्रमों का

आनंद लेते थे। नए साल का जश्न पूरा भारत एक ही कार्यक्रम देखकर मनाता था व दूसरे दिन उस पर चर्चा-परिचर्चा भी होती थी।

अब यह सभी बीते दिनों कि बात हो गई है। अब पारिवारिक कार्यक्रमों के अभाव में परिवार में भी एकरसता नहीं रह गई है बल्कि परिवार के सदस्यों ने अपने मनोरंजन के लिए अलग-अलग साधन ढूँढ़ लिए हैं जो पारिवारिक व सामाजिक विघटन के परिचायक हैं। यह स्थिति भारतीय समाज के लिए चिंताजनक है क्योंकि भारतीय अपनी सभ्यता व संस्कृति के लिए जाने जाते हैं, लेकिन वर्तमान परिस्थिति भारतीय संस्कृति का ह्रास कर रही है जिससे संस्कार विलुप्त होते जा रहें हैं। यह एक गंभीर विषय है जिसपर चिंतन नहीं बल्कि एक्शन (कार्यवाही) करने की जरुरत है।

समाज को पतित व युवाओं को दिशाहीन होने से बचाने के लिए ओ.टी.टी. पर मानक तय करके लगाम लगाने की आवश्यकता है। इसके लिए सेंसर बोर्ड को कड़ी कार्यवाही करने की जरूरत है। कोई भी मूवी, सीरीज, धारावाहिक बनाने से पहले व उनके प्रसारण से पहले यह जानना व निरीक्षण करना ज़रूरी है कि वो समाज को क्या शिक्षा देने जा रहे हैं व कैसे उदाहरण प्रस्तुत करने की ओर अग्रसर हैं। इस दिशा में कड़े कदम उठाने की आवश्यकता है क्योंकि मनोरंजन के नाम पर फूहड़ता, हिंसा, अश्लीलता दिखाना कहाँ तक उचित है? बच्चे यदि गालियाँ देने लगें या अमर्यादित व्यवहार व भाषा का प्रयोग करेंगे तो अपने आगे आने वाली पीढ़ी को क्या संस्कार देंगे? इसलिए अगर अपने समाज व संस्कृति को सहेजना है तो हमें इस विषय में संज्ञान लेना ही होगा तभी देश का भविष्य सुरक्षित होगा।

दूरसंचार विवाद निपटान अपीलीय न्यायाधिकरण (टीडीएसएटी) ने फैसला सुनाया है कि हॉटस्टार जैसे ओवर द टॉप (ओटीटी) प्लेटफॉर्म भारतीय दूरसंचार नियामक प्राधिकरण (ट्राई) के अधिकार क्षेत्र में नहीं हैं और सूचना प्रौद्योगिकी नियम, 2021 द्वारा अधिसूचित हैं। प्रश्न यही है कि क्या सूचना प्रौद्योगिकी नियम, 2021 इन प्लेट फार्मों पर समुचित नियंत्रण कर सकते हैं?

❑

संदर्भ

1. मध्यस्थ दिशानिर्देश और डिजिटल मीडिया आचार संहिता) नियम 2021 https://pib.gov.in/PressReleseDetailm-aspx\PRID(1700749
2. https://www.gadgetskool.comxtt-full-form-and-popular-OT-appsx
3. https://www.abhidhvajlawjournal.com.translate.googècensorship.of&ott&platforms&a&boon&or&bane//_x_tr_sl(en._x_tr_tl)hi&_x_tr_hl(hi&_x_tr _pto)tc
4. इलेक्ट्रॉनिक्स और सूचना मंत्रालय, दिनांक 13, अक्तूबर 2023

डॉ. भूमिका शर्मा और डॉ. तरुण कुमार कौशिक

उच्चतम न्यायालय का बिलकिस बानो के मामला में फैसला : गोधरा त्रासदी का पुनर्कथन

> ''एक महिला सम्मान की हक़दार है, भले ही उसे समाज में कितना भी ऊँचा या नीचा क्यों न माना जाए या चाहे वह किसी भी धर्म या पंथ को मानती हो। क्या महिलाओं के खिलाफ जघन्य अपराधों में छूट दी जा सकती है?''
>
> -- न्यायमूर्ति बी.वी. नागरत्ना

1. गुजरात दंगों की पृष्ठभूमि

27.2.2002 को गोधरा रेलवे स्टेशन के पास साबरमती एक्सप्रेस ट्रेन के दो कोच पर एकत्रित भीड़ ने पेट्रोल डाल कर आग लगा दी। इन डिब्बों में यात्रा कर रहे 59 कारसेवक जिंदा जल कर मर गये जिन में महिलाएँ और बच्चे भी शामिल थे। पता चला कि आग लगाने वाली भीड़ मुस्लिम समुदाय से थी जिसने जलते डिब्बों से किसी को बाहर तक नहीं आने दिया क्योंकि बाहर भीड़ इन डिब्बों पर पत्थरबाजी कर रही थी और आग बुझाने वाली गाड़ियों को भीड़ ने आगे नहीं आने दिया। इस जधन्य गोधरा कांड ने पूरे गुजरात को झकझोर कर रख दिया था जिसके कारण दंगे भड़क उठे जिसके परिणामस्वरूप लगभग 1100 व्यक्ति मारे गए और कई घायल भी हुए।

गुजरात सरकार को इस घटना में साजिश का संदेह था। राज्य सरकार के अनुसार उसी साजिश के तहत ये गोधरा स्टेशन के पास ट्रेन रोकी गई और पत्थरों आदि से हमला किया गया और पेट्रोल फेंककर आग लगा दी गई।

घटनाओं की गंभीरता और जनता की माँग को ध्यान में रखते हुए गुजरात सरकार ने जाँच आयोग अधिनियम, 1952 की धारा 3 के तहत जाँच आयोग नियुक्त करने का निर्णय लिया। श्री न्यायमूर्ति जी.टी. नानावटी और श्रीमान न्यायमूर्ति अक्षय एच.मेहता जाँच आयोग के सदस्य थे। आयोग ने गोधरा रेलवे स्टेशन और घटना स्थल का भी दौरा किया था और जले कोच एस-6 की जाँच भी की। गोधरा रेलवे स्टेशन के कर्मचारियों ने कोई बयान दर्ज़ नहीं किया जिसके कारण जाँच आयोग को यह पता नहीं चल सका कि गोधरा कांड वास्तव में कैसे हुआ था।

गोधरा और गोधरा के बाद हुए 12 प्रमुख दंगों के मामलों में, लगभग 600 लोगों को आरोपी बनाया गया था, जिनमें से लगभग 200 को दोषी ठहराया गया था, 150 से अधिक को आजीवन कारावास की सज़ा दी गई थी।

2. याचिकाकर्ता बिलकिस बानो का मामला

गुजरात दंगों के दौरान बिलकिस याकूब रसूल, जो उस समय 21 साल की थी और गर्भवती थी,के साथ सामूहिक बलात्कार किया गया। उसकी माँ और उसकी चचेरी बहन के साथ भी सामूहिक बलात्कार किया गया और उसके नवजात बच्चे के साथ सभी की हत्या कर दी गई। आठ नाबालिग, दो दिन के नवजात और बिलकिस की तीन साल की बेटी का सिर कुचलकर हत्या कर दी गई।

इस संबंध में सभी अपराधी पकड़े गए और उन्हें आजीवन कारावास का दंड दिया गया। वे सभी अपराधी पिछले पंद्रह सालों से कारावास भोग रहे थे कि कुछ समय पहले गुजरात सरकार ने उन्हें जेल से रिहा कर दिया जिसके विरुद्ध बिलकिस बानो ने उच्चतम न्यायालय में प्रतिवादी क्रमांक 3 से 13 तक के 10.08.2022 के सामूहिक छूट के आदेश को चुनौती देकर न्याय की गुहार लगाई। इस याचिका में गुजरात राज्य सरकार के उस फैसले को चुनौती दी गई थी जिसके अंतर्गत सज़ा भोग रहे इन अपराधियों को समय पूर्व छोड़ दिया गया था।

इस मामले में आरंभ में सात साल के एक चश्मदीद गवाह ने गवाही दी थी कि 2002 के गुजरात दंगों के दौरान भीड़ ने गुजरात के दाहोद जिले के लिमखेड़ा तालुका में उसकी चचेरी बहन बिलकिस बानो और परिवार के अन्य सदस्यों पर हमला किया और उनमें से 14 को मार डाला था, ऐसे दोषियों को फाँसी दी जानी चाहिए या शेष जीवन के लिए जेल में रखा जाना चाहिए, तभी न्याय मिलेगा।

बिलकिस बानो के इसी मामले को 2008 में महाराष्ट्र में स्थानांतरित कर दिया गया था। मुंबई की एक सत्र अदालत ने बिलकिस बानो मामले में आरोपियों को भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 302 और धारा 376 (2) (ई) (जी) के साथ धारा 149 के तहत दोषी ठहराया। 20 लोगों में से 13 को दोषी ठहराया और 7 को सबूतों के अभाव में बरी कर दिया गया। मई 2017 में न्यायमूर्ति वीके ताहिलरमानी की अध्यक्षता वाली बॉम्बे हाई कोर्ट की पीठ ने 11 दोषियों की दोषसिद्धि और आजीवन कारावास को बरकरार रखा। 2019 में उच्चतम न्यायालय ने भी गुजरात सरकार को बानो को मुआवजे के रूप में 50 लाख रुपये का भुगतान करने के साथ-साथ उसे सरकारी नौकरी और एक घर प्रदान करने का आदेश दिया ।

3. क्षमा के लिए प्रार्थना

गुजरात सरकार द्वारा बिलकिस बानो मामले में सज़ा भोग रहे अपराधियों में से राधेश्याम भगवानदास शाह ने 2022 की संख्या 135 की उनकी क्षमा याचिका पर विचार करने के लिए प्रार्थना की रिट याचिका दायर की। उच्चतम न्यायालय ने दिनांक 13.05.2022 के अपने आदेश

में यह यह माना कि छूट देने की नीति वहीं लागू होगी जो दोषसिद्धि के समय अर्थात् 1992 के समय प्रचलन में थी।

उच्चतम न्यायालय के अनुसार सीआरपीसी की धारा 432 के प्रयोजनों के लिए छूट आवेदन पर विचार करने के लिए 'उचित सरकार' वह राज्य है जिसमें अपराध किया गया था, न कि वह राज्य जिसमें मुकदमा चलाया गया। इसलिए राज्य को निर्देशित किया गया कि गुजरात सरकार एक अवधि के भीतर कैदी के आवेदन पर विचार करेगी। तदनुसार, गुजरात राज्य ने सीआरपीसी की धारा 432 और धारा 435 के साथ-साथ 1992 की दोषियों की समयपूर्व रिहाई नीति के अनुसार बंदियों के आवेदन पर विचार किया। उपरोक्तानुसार 1992 की नीति के अनुसार जिन कैदियों की चौदह वर्ष कारावास की सज़ा पूरी हो चुकी थी और आजीवन कारावास की सज़ा दी गई थी और उनकी शीघ्र रिहाई के लिए प्रावधान हैं। राज्य सरकार ने सभी ग्यारह दोषी के मामले पर 1992 की नीति के अनुसार विचार किया। चूँकि सीबीआई एक केंद्रीय जाँच एजेंसी थी,इसलिए राज्य सरकार ने भारत सरकार का अनुमोदन/उपयुक्त आदेश हासिल किया। सभी अधिकारियों की राय राज्य सरकार द्वारा को गृह मंत्रालय, भारत सरकार सौंपी गई।

भारत सरकार के द्वारा अपनी सहमति व्यक्त करने के बाद राज्य सरकार ने ग्यारह दोषियों को रिहा करने का फैसला 2022 को दे दिया क्योंकि वे सभी ग्यारह दोषी जेल में चौदह वर्ष या उससे अधिक की सज़ा पूरी कर चुके थे और उनका व्यवहार अच्छा पाया गया था।

4. बिल्किस बानो की रिट याचिका में विचारणीय बिंदु

(i) क्या पीड़ितों में से बिलकिस द्वारा दायर 2022 की संख्या 491 याचिका संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत अनुरक्षणीय है?

(ii) क्या छूट के आदेश दिनांक 10.08.2022 के खिलाफ रिट जनहित के रूप में दायर याचिकाएँ अनुरक्षणीय है?

(iii) क्या गुजरात राज्य सरकार छूट के आदेश पारित करने में सक्षम थी?

(iv) क्या गुजरात राज्य के द्वारा ग्यारह अपराधियों के संबंध छूट आदेश क़ानून के अनुरूप है?

5. याचिकाकर्ताओं की दलीलें

याचिकाकर्ताओं की सूची में भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी) नेता सुभाषिनी अली, प्रोफेसर रूपलेखा वर्मा, पत्रकार रेवती लाल, तृणमूल कांग्रेस सांसद महुआ मोइत्रा, पूर्व आईपीएस अधिकारी मीरान चड्ढा बोरवंकर और नेशनल फेडरेशन ऑफ इंडियन वुमेन शामिल हैं। इन याचिकाकर्ताओं ने कहा कि ग्यारह अपराधियों को दी गई सामूहिक छूट ने न केवल पीड़िता-याचिकाकर्ता और उसके परिवार को तोड़ दिया है, बल्कि भारतीय समाज के सामूहिक विवेक को भी झकझोर कर रख दिया है। हालाँकि अपराध गुजरात राज्य में किया गया था,

जाँच और मुकदमा महाराष्ट्र राज्य में चलाया गया। इस तरह धारा 432(7)(बी) की स्पष्ट भाषा को ध्यान में रखते हुए, केवल महाराष्ट्र राज्य उपयुक्त सरकार होगी जो प्रतिवादी द्वारा दायर आवेदनों पर विचार करने में समर्थ है। गुजरात राज्य द्वारा पारित छूट अधिकार अपराधियों के संबंध में असमान्य है।

6. गुजरात राज्य की दलीलें

11 दोषियों में बाकाभाई वोहानिया, बिपिन चंद्र जोशी, केसरभाई वोहानिया, गोविंद नाई, जसवंत नाई, मितेश भट्ट, प्रदीप मोरधिया, राधेश्याम शाह, राजूभाई सोनी, रमेश चंदना और शैलेश भट्ट शामिल हैं।

विद्वान एएसजी ने गुजरात राज्य और भारत संघ की ओर से भी उपस्थित हो बताया कि रिट याचिकाएँ सार्वजनिक रूप से दायर की गईं। याचिकाकर्ताओं का इस मामले से कोई संबंध नहीं हैं इसलिए वे छूट के आक्षेपित आदेशों के लिए अजनबी हैं।

वर्तमान याचिका का अधिकार कैसे हैं और ग्रेटर मुंबई के विशेष न्यायाधीश के द्वारा ग्यारह दोषियों को छूट के आदेश से उनके मौलिक अधिकारों का हनन कैसे किया गया है। वर्तमान याचिक राजनीतिक साजिशों और साज़िशों से प्रेरित है क्योंकि याचिकाकर्ता 'व्यथित व्यक्ति' नहीं हैं, यह रिट याचिका सुनवाई योग्य नहीं है और बाहरी उद्देश्यों के लिए वर्तमान याचिका को दायर किया गया है।

7. उच्चतम न्यायालय की टिप्पणियाँ और निर्णय

यदि लोकतंत्र के सार क़ानून के शासन को यथावत बनाए रखना है तो इसे भय या पक्षपात, स्नेह या द्वेष के बिना लागू करना अदालतों का कर्तव्य है। उच्चतम न्यायालय ने इन याचिकाओं में उठाए गए बिंदुओं पर गंभीरता से विचार कर 251 पन्नों के फैसले में कहा कि गुजरात सरकार के पास सज़ा माफ़ी के आवेदन पर विचार करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है और केवल उस राज्य की सरकार ही सज़ा माफ़ी के आवेदन पर विचार करने और आदेश पारित करने में सक्षम है, जहाँ अपराधियों को सज़ा सुनाई गई थी।

उच्चतम न्यायालय ने 8 जनवरी, 2024 को बिलकिस बानो मामले में ग्यारह आजीवन दोषियों की समय पूर्व रिहाई को रद्द कर दिया। जस्टिस अजय रस्तोगी और विक्रम नाथ की पीठ द्वारा दिया दिए गए 2 मई, 2022 के फैसले को वैधानिक अधिदेश की अनदेखी के लिए प्रति इन्क्यूरियम (क़ानून में ख़राब) पाया गया। दोषी राधेश्याम शाह द्वारा दायर रिट याचिका में न्यायमूर्ति बी.वी. नागरत्ना और न्यायमूर्ति उज्जल भुइयाँ की पीठ ने कहा कि मई, 2022 का निर्देश जिसने गुजरात उच्च न्यायालय के पहले के फैसले महत्त्वपूर्ण तथ्यों को छुपाया था। दो न्यायाधीशों की पीठ को सूचित किया गया कि शाह ने अपनी माफ़ी याचिका पर विचार करने के लिए गुजरात राज्य को निर्देश देने के लिए सबसे पहले गुजरात उच्च न्यायालय से संपर्क किया था। उच्च न्यायालय ने यह कहते हुए उनकी याचिका का निपटारा कर दिया

था कि उन्हें उचित सरकार, यानी महाराष्ट्र राज्य से संपर्क करना चाहिए। एक दूसरी अर्जी भी गुजरात हाई कोर्ट ने ख़ारिज कर दी।

उच्चतम न्यायालय ने 19 जनवरी, 2024 को बिलकिस बानो मामले के सभी ग्यारह दोषियों द्वारा आत्मसमर्पण करने के लिए अतिरिक्त समय की माँग करने वाली याचिका ख़ारिज कर दी। उच्चतम न्यायालय ने कहा कि दोषियों ने आत्मसमर्पण के लिए समय बढ़ाने की जो वज़ह बताई है, उसमें मजबूती नहीं है। दोषियों ने 'ख़राब स्वास्थ्य', 'सर्दियों की फसल की कटाई' और 'बेटे की शादी' के कारण आत्मसमर्पण के लिए समय बढ़ाने की माँग की है।

(i) छूट का अनुदान केवल इसलिए प्रतिबंधित नहीं किया जा सकता कि कोई दोषी जुर्माना वहन करने में आर्थिक रूप से सक्षम नहीं है।

(ii) मौजूदा मामले में याचिकाकर्ता-बिलकिस बानो ने अनुच्छेद 32 के तहत अपनी रिट याचिका दायर की है। गुजरात उच्च न्यायालय इस न्यायालय द्वारा जारी किए गए स्पष्ट निर्देश के मद्देनजर उपरोक्त विवाद पर विचार करने की स्थिति में नहीं होगा।

(iii) क़ानून का शासन प्रचलित होना चाहिए। सभी दोषियों को 8 जनवरी, 2024 से दो सप्ताह के भीतर संबंधित जेल अधिकारियों को रिपोर्ट करने का निर्देश दिया जाता है।

❑

संतोष बंसल

भारत में महिलाओं के बढ़ते चरण

गणतंत्र दिवस के 75वें गौरवशाली साल में अर्थात् वर्ष 26.01.2024 में राजपथ की परेड में भारत की लैंगिक समानता के मुद्दे पर हुई प्रगति प्रत्यक्ष दिख रही थी क्योंकि कार्यक्रम की शुरुआत से लेकर सेना के शक्ति प्रदर्शन तक महिलाएँ महत्त्वपूर्ण भूमिका में मौजूद थी। परेड में तीनों सेनाओं और अन्य सुरक्षा बलों की सभी टुकड़ियों का नेतृत्व भी महिलाओं ने किया एवं रक्षा अनुसंधान एवं विकास संगठन की झांकी का नेतृत्व वैज्ञानिक सुनीता जैन ने किया। परेड में जिस टुकड़ी ने सबका ध्यान खींचा, वह थी सेना के एक इंजीनियरिंग 'कोर बांबे सैपर्स' की टुकड़ी। इसमें सभी पुरुष थे, लेकिन उसका नेतृत्व एक महिला दिव्या त्यागी कर रही थी। राज्यों की झांकियों और परम्परागत नृत्य मंडलियों में महिलाएँ ही आगे थी, लेकिन सबसे ज्यादा चर्चा सुरक्षा बलों में महिलाओं की भूमिका को लेकर ही हुई। परेड में शामिल ये टुकड़ियां आदिवासी महिला राष्ट्रपति द्रौपदी मुर्मु को सलामी दे रही थी जो यह बताता है कि भारतीय समाज अपने बंधन तोड़कर कितना आगे बढ़ चुका है और जिससे सिद्ध होता है कि सिर्फ सैनिकों, अफसरों और पेशेवरों के मामले में ही महिलाएँ आगे नहीं हैं, बल्कि सत्ता तंत्र चलाने में भी वे बहुत आगे पहुँच चुकी हैं।

वैसे पिछले दिनों जिस तरह से भारत ने महिला आरक्षण विधेयक संसद के दोनों सत्रों में पास किया और राष्ट्रपति की सहमति मिलते ही जिसने क़ानून का रूप ले लिया, उससे यह तय है कि आने वाले समय में राजनीति में महिलाएँ ज्यादा बड़ी भूमिका निभाने जा रही हैं एवं उनकी सोच और आग्रह के स्तर पर जो सबसे बड़ी बाधा थी अब वह पूरी तरह खत्म हो चुकी है। यद्यपि देश में शासकीय प्रबंधन, पर्यावरण संरक्षण और सामाजिक विकास जैसे मुद्दों से सभी का साक्षात्कार हो रहा है, किंतु महिलाओं की इन क्षेत्रों में आगे क्या भूमिका रहेगी? इस विषय पर चर्चा से पूर्व हमें महिलाओं के वर्तमान विमर्शों और उनके निदान तथा निष्कर्षों पर प्रकाश डालना होगा। इसी परिप्रेक्ष्य में हम सन् 2047 में अर्थात् स्वतंत्रता की सौवीं वर्षगाँठ के सुअवसर पर महिलाओं के योगदान की निष्पक्ष जाँच कर पाएँगे। भविष्य की इस काल्पनिक संभावना को रेखांकित करने से पहले हमें भारतीय परिवेश के अतीत और वर्तमान में झाँकना चाहिए क्योंकि मध्यकाल में स्त्रियों को अज्ञान और अंधकार के युग धकेल दिया गया था। स्वतंत्रता संग्राम के दौरान महात्मा गाँधी ने महिलाओं को जागृत किया। उन्हें घर

की चारदीवारी और पर्दे के बंधन से बाहर निकालकर सामाजिक और राजनैतिक मैदान में ला खड़ा किया। स्वाधीनता के उपरांत संविधान में लैंगिक समानता और मौलिक अधिकारों का समावेश किया गया, किंतु उन्हें वास्तविक धरातल पर लाने में बहुत समय लगा। उन के महिलाओं के जीवन में आते-आते बहुत बदलाव हुआ और वर्तमान में भी ऐसे परिवर्तन जारी हैं, जिनसे महिलाओं की स्थिति सुदृढ़ और समान हो। इस संबंध में न्यायपालिका की भूमिका को रेखांकित करना होगा जिसने अपने एतिहासिक फैसलों से लड़कियों या स्त्रियों को परिवार, समाज और राष्ट्रीय स्तर पर समानता का हक़ प्राप्त हुआ। इन सें महिलाओं को सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक गतिविधियों में भागीदारी का मौका मिला और वे सक्षम साबित हुई। यह कैसे संभव हुआ? इसमें उच्चतम न्यायालय द्वारा लिए गए अनेक ऐतिहासिक फैसले शामिल हैं, जिनके कारण स्त्रियों की दशा में सुधार हुआ। न्यायपालिका के इतिहास में 11 अगस्त, 2020 का दिन अत्यंत महत्त्वपूर्ण माना जाएगा, जब उच्चतम न्यायालय ने पैतृक संपत्ति में महिलाओं के सहदायिकी संबंधी अधिकार से जुड़ी क़ानूनी भ्रान्ति को दूर किया। सन् 1956 के हिंदू उत्तराधिकार क़ानून में हिंदू परिवार की संपति में बेटियों को बेटों के बराबर अधिकार नहीं था। पारम्परिक हिंदू विधि में बेटियों को सहदायिकी नहीं माना जाता था, इसीलिए परिवार की संपत्ति में जन्मना अधिकार नहीं था। लेकिन संविधान के माध्यम से ऐसे समाज की कल्पना और वादा किया गया, जिसमे महिला और पुरुष के बीच कोई भेदभाव नहीं हो तथा हिंदू विवाह, दत्तक ग्रहण तथा उत्तराधिकार के क्षेत्र में महिलाओं को पुरुषों के बराबर अधिकार दिए गए। 9 सितंबर, 2005 में हिंदू उत्तराधिकार क़ानून में संशोधन करके बेटियों को भी पिता की संपत्ति और दायित्व में बेटों के बराबर ‘सहदायिकी अधिकार’ दिया गया। बेटियों को केवल अधिकार ही नहीं, उनके दायित्व को भी सुनिश्चित किया गया। इसके तहत अन्य बातों के अलावा बच्चों पर अपने माता-पिता के भरण-पोषण की जिम्मेदारी दी गई। पहले बेटियों को लोग इससे मुक्त मानते थे, क्योंकि उन्हें दूसरे घर जाना होता है। इस तरह से औरत का अपना घर कोई नहीं होता था, किंतु इस क़ानून ने स्त्रियों को संरक्षण प्रदान किया।

संरक्षण के साथ महिलाओं को जो सामाजिक सुरक्षा प्राप्त हुई, उसमें भी न्यायपालिका द्वारा दिया गया फैसला अहम् है। दिसंबर, 2012 के निर्भया सामूहिक बलात्कार के बाद नए क़ानूनों के पारित होने के बावजूद भारत की महिलाएँ यौन हिंसा के खिलाफ लड़ाई लड़ती रही हैं। ‘मी टू मूवमेंट’ ने बेशक कुछ महिलाओं को आवाज़ दी है और एक मंच भी प्रदान किया है। भारत की असंख्य कामकाजी महिलाओं, जिन में दलित, आदिवासी और हाशिये पर पड़ी महिलाएँ भी शामिल हैं को कार्यस्थल पर यौन शौषण से सुरक्षा प्रदान करने के लिए संसद ने वर्ष 2013 में कार्य स्थल पर यौन शोषण निवारण के लिए भी एक क़ानून बनाया। इस क़ानून के अंतर्गत घरों में काम करने वाली महिलाओं, ईंट भट्ठों, कपड़ा कारखानों, खेतिहर मजदूरों के रूप में कार्यरत महिलाओं को भी सुरक्षित किया गया हैं।

यह सब होते हुए भी यह दूसरी बात है कि नमिता भंडारे के अनुसार, “यह ऐसा समय

है, जब हमने पिछले चार वर्षों में महिलाओं के खिलाफ अपराधों में 66 प्रतिशत से अधिक की वृद्धि देखी है और लोगों के मन में हाथरस का आघात बरकरार है। जो लोग पूछते हैं कि ऐसे मामलों में जाति का जिक्र क्यों जरूरी है? वे यह भूल जातें हैं कि जाति भी सक्षम शक्ति संरचना का ही हिस्सा है, जो हिंसा को आसान बनाती है।'' (लेख : सत्ता संरचना बदलकर होगी स्त्री सम्मान की रक्षा, हिंदी हिंदुस्तान अख़बार)

भारतीय समाज में महिलाओं के पिछड़ेपन के अहम् कारण में धार्मिक मान्यताओं का बड़ा हाथ है जिनके तहत जहाँ कुछ मंदिरों में महिलाओं का प्रवेश निषिद्ध था, वहीं उन्हें कई अनुष्ठानों और प्रथाओं में वंचित माना जाता हैं। जैसे पुत्री को अपने माता-पिता को मुखाग्नि का अधिकार प्राप्त नहीं था और वह अंतिम संस्कार की किसी भी विधि-विधान में हिस्सा नहीं ले सकती थी। इसके अतिरिक्त, महिलाओं के मासिक धर्म के दौरान, उन्हें 'अपवित्र' समझकर पूजा-पाठ पर रोक लगाईं जाती रही है। इसके अतिरिक्त, देवालय में चाहे देवी की प्रतिमा स्थापित होती है, किंतु परम्परा के अनुसार पुजारी कोई पुरुष ही हो सकता है। दक्षिण भारत में औरतों द्वारा अदालत का दरवाजा खटखटाने पर हाई कोर्ट के न्यायमूर्ति ने फैंसला सुनाया, ''ईश्वर की वेदियाँ लैंगिक पूर्वाग्रहों से मुक्त होनी चाहिए।'' इस आदेश के बाद मंदिर प्रशासन के द्रमुक राज्यमंत्री ने यह घोषणा की कि पुजारी के पद के लिए महिलाएँ और गैर ब्राह्मण आवेदन कर सकते हैं, बशर्ते उन्होंने 'आगमशास्त्र' का अध्ययन किया हो और इसमें उनकी दक्षता हो। इसी तरह तमिलनाडु के सबरीमाला मंदिर का फैसला, नारी वादी न्याय शास्त्र में मील का पत्थर माना जाना चाहिए। जहाँ बहुत वर्षों से महिलाओं को पूजा करने से रोका जा रहा था, जबकि अब वहाँ स्त्रियों का प्रवेश वर्जित नहीं है। फैसले में न्यायमूर्ति चंद्रू ने कहा, "महिलाओं को जीवन के हर क्षेत्र में भाग लेने का मौका मिलना चाहिए, चाहे वह आध्यात्मिक हो या भौतिक।"

भारतीय राजनीति में महिलाओं की भूमिका कुछ हद तक बढ़ी है और वर्तमान संसद में उनकी हिस्सेदारी 22 प्रतिशत है जोकि अब तक का रिकॉर्ड है। विश्व भर में महिलाओं की भागीदारी कम होने के पीछे पितृ-सत्तात्मक ढाँचा है, जो उनके लिए अनेक अड़चने पैदा करता है। पितृ सत्ता के असर के अलावा, राजनीतिक दल महिलाओं को चुनावों में उचित हिस्सेदारी देने से कतराते हैं। महिला राजनेताओं के नेतृत्व और उनकी कार्यशैली पर प्रश्नचिन्ह लगाने वाली मानसिकता इस प्रश्न का उत्तर नहीं ढूंढ पा रही है कि कोविड-19 की महामारी के खिलाफ लड़ाई में न्यूजीलैंड से जर्मनी तक, ताइवान से लेकर नार्वे तक दुनिया में ऐसे कई देश हैं, जहाँ नेतृत्व की कमान महिलाओं के हाथ में थी। भारत में एक अध्ययन के मुताबिक, चुनावों में टिकट पाने वाली अधिकतर महिला उम्मीदवारों का पारिवारिक राजनीतिक संबंध है। वास्तव में जीवन के अन्य क्षेत्रों की तरह राजनीति में भी महिलाओं के विरुद्ध अवमानना तथा नकारात्मकता का विचार रहता है, जो उन्हें राजनीतिक क्षेत्र में आगे आने के लिए हतोत्साहित करता है जबकि उनका राजनीति में आना किसी भी लोकतांत्रिक व्यवस्था की बेहतरी और लैंगिक समानता के लिए आवश्यक है और वह तब भी जब मतदान करने में महिलाओं का

प्रतिशत पुरुषों से अधिक हो गया है। प्रसिद्ध समाजशास्त्री सुश्री ऋतु सारस्वत के शब्दों में, "विभिन्न शोध बताते हैं कि लैंगिक रूढ़ियों, मनोवैज्ञानिक और पारम्परिक बाधाओं, शिक्षा प्रशिक्षण व संसाधनों में असमानता के चलते दुनिया में हर जगह राजनीति में स्त्रियों की भागीदारी सीमित है।" (लेख : राजनीति में सिमटती महिला भागीदारी के निहितार्थ-हिंदी हिंदुस्तान अख़बार) परंतु अब वर्ष 2023 में नारी शक्ति वंदन क़ानून बन जाने से संसद और राज्य विधायिका में नारी प्रतिनिधित्व कम से कम 33 प्रतिशत हो जाएगा।

वस्तुतः महिलाओं के अधिकारों और लैंगिक समानता के लिए जिस न्यायपालिका ने अहम् फैसले दिए, स्वयं देश की उसी उच्चतम न्यायालय में किसी महिला न्यायधीश को पहुँचने में 39 साल लग गए। दरअसल जब तीन महिला न्यायाधीश पदोन्नत हुई, तो उनमें से एक न्यायमूर्ति बीवी नागरत्ना साल 2027 में हमारे देश की पहली महिला प्रधान न्यायाधीश बनने को तैयार हैं। यद्यपि वह इस पद पर महज 36 दिन हीं रह पाएँगी, तब भी वह ऐतिहासिक क्षण होगा। कॉलेजियम मानता है कि महत्त्वपूर्ण सांविधानिक व क़ानूनी मामलों पर अकेले पुरुष अपना शासन जारी नहीं रख सकते। इसके अलावा, जब तक स्त्रियों को अधिकार देने के लिए हम अपने समाज की सत्ता व्यवस्था को पुनः दुरुस्त नहीं करते, तब तक क़ानून भी बेअसर रहेंगे। क्योंकि महिलाओं को घर की चारदीवारी के भीतर रखने और उनकी घरेलु जिम्मेदारियां समझने की पुरानी मानसिकता दुःखद, पर कटु सत्य है। एक वरिष्ठ पत्रकार के शब्दों में ''महिलाओं में सपनों व महत्त्वाकांक्षाओं की कोई कमी नहीं है, पर वे समर्थन या सहयोग का अभाव झेलती हैं। समस्या भौतिक बुनियादी ढाँचे (शौचालय, डे केयर सुविधाओं) से लेकर प्रशासनिक अड़चनों तक फैली हैं। जब बच्चे बोर्ड की परीक्षा जैसे महत्त्वपूर्ण वर्षों में पहुंचते हैं या जब माता-पिता या अभिभावकों की उम्र बढ़ने लगती है, तब महिलाओं को ही त्याग करते हुए पीछे हटना पड़ता है।" (लेख-न्याय के मोर्चे पर महिलाओं का बहुत लंबा सफर, हिंदी हिंदुस्तान अख़बार)

सबसे ज्यादा असमानता राजनीति में दर्ज़ की गई है, जहाँ उनकी हिस्सेदारी मात्र 22 प्रतिशत है। विश्व भर में महिलाओं की भागीदारी कम होने के पीछे पितृ-सत्तात्मक ढाँचा है, जो उनके लिए अनेक अड़चने पैदा करता है। पितृ सत्ता के असर के अलावा, राजनीतिक दल महिलाओं को चुनावों में उचित हिस्सेदारी देने से कतराते हैं। महिला राजनेताओं के नेतृत्व और उनकी कार्यशैली पर प्रश्नचिन्ह लगाने वाली मानसिकता इस प्रश्न का उत्तर नहीं ढूंढ पा रही है कि कोविड-19 की महामारी के खिलाफ लड़ाई में न्यूजीलैंड से जर्मनी तक, ताइवान से लेकर नार्वे तक दुनिया में ऐसे कई देश हैं, जहाँ नेतृत्व की कमान महिलाओं के हाथ में थी। भारत में एक अध्ययन के मुताबिक, चुनावों में टिकट पाने वाली अधिकतर महिला उम्मीदवारों का पारिवारिक राजनीतिक संबंध है। वास्तव में जीवन के अन्य क्षेत्रों की तरह राजनीति में भी महिलाओं के विरुद्ध अवमानना तथा नकारात्मकता का विचार रहता है, जो उन्हें आगे आने के लिए हतोत्साहित करता है। जबकि उनका राजनीति में आना किसी भी

लोकतांत्रिक व्यवस्था की बेहतरी और लैंगिक समानता के लिए आवश्यक है। प्रसिद्ध समाजशास्त्री सुश्री ऋतु सारस्वत के शब्दों में, "विभिन्न शोध बताते हैं कि लैंगिक रूढ़ियों, मनोवैज्ञानिक और पारम्परिक बाधाओं, शिक्षा प्रशिक्षण व संसाधनों में असमानता के चलते दुनिया में हर जगह राजनीति में स्त्रियों की भागीदारी सीमित है।" (लेख-राजनीति में सिमटती महिला भागीदारी के निहितार्थ-हिंदी हिंदुस्तान अख़बार)

अंततः बहुत-सी बाधाओं के बावजूद जहाँ महिलाओं की चिकित्सीय और शिक्षा क्षेत्र में सदैव भागीदारी रही है, वहीं अब अंतरिक्ष अभियानों में भी महिलाओं की अहम् भूमिका रही है। सन 1970 के दशक तक 'इसरो' में महिलाएँ बिलकुल नहीं थी, किंतु अब इसरो के 16,000 से अधिक स्टाफ में 25 प्रतिशत महिलाएँ कार्यरत हैं। पिछले वर्ष चाँद के दक्षिणी ध्रुव पर सफल लैंडिंग करने वाले चंद्रयान-3 की टीम में सौ से अधिक महिलाएँ थी। भारत के पहले सूर्य मिशन आदित्य एल-1 की प्रोजेक्ट डायरेक्टर ही एक महिला निगार शाजी थी, जिन्होंने दिन-रात मेहनत करके अभियान को सफल बनाया। आई.टी. क्षेत्र में भी 20 लाख से अधिक महिलाकर्मी कार्यरत हैं, जबकि 2012-2013 में नौ लाख महिलाओं को रोजगार मिला। वर्तमान में राजनीति, स्टार्टअप और सैन्य क्षेत्र में भी महिलाएँ मजबूती से खड़ी हैं और महिला साक्षरता दर 77 फीसदी तक पहुँची है। पहली बार वर्ष 1992 में महिलाओं को सेना, वायु सेना और नौसेना में 'शार्ट सर्विस कमीशन' (एस.एस.सी.) अधिकारी के रूप में नियुक्त किया गया। संसद में पेश आँकड़ों के अनुसार वर्तमान में 11,414 महिलाएँ सेना में विभिन्न पदों पर हैं एवं संसद में भी 14.4 प्रतिशत महिला सदस्य मौजूद हैं।" यह सच है कि महिलाएँ हर क्षेत्र में आगे आई हैं, पर अभी जो स्थिति है, उससे बहुत संतुष्ट नहीं हुआ जा सकता। महिलाओं के लिए अभी अनेक मोर्चे ऐसे हैं, जहाँ उनकी मजबूत मौजूदगी की दरकार है।" (नारी शक्ति का प्रदर्शन-संपादकीय, हिंदी हिंदुस्तान अख़बार, 27 जनवरी 2024)

❑

डॉ. विपिन कुमार सिंह

अभिहित भागीदार और उसका उत्तर दायित्व : सीमित दायित्व भागीदारी अधिनियम, 2008 के अंतर्गत संबंधित विधि का अध्ययन

एकल, साझेदारी, कंपनी आदि विभिन्न व्यावसायिक संगठनों में कंपनी एक प्रमुख प्रचलित एवं महत्त्वपूर्ण व्यावसायिक संगठन है क्योंकि कंपनी का सदस्यों से भिन्न एक स्वतंत्र अस्तित्व, शाश्वत उत्तराधिकार और सदस्यों का दायित्व सीमित होता है। इससे भिन्न भागीदारी में सदस्यों का दायित्व असीमित और फर्म का अस्तित्व अस्थाई होता है। भागीदारी के माध्यम से कारोबार किए जाने का क्षेत्र उत्तरोत्तर सीमित होते रहने के कारण भारत की अर्थव्यवस्था पर विपरीत प्रभाव पड़ने लगा। दूसरी ओर कंपनी के प्रबंध प्रशासन में विशेषकर सार्वजनिक कंपनी में कंपनी के सदस्यों का कोई प्रत्यक्ष नियंत्रण नहीं होता है क्योंकि कंपनी का प्रबंध व प्रशासन एक स्वतंत्र निदेशक मंडल जिसमें चुने गए कंपनी के सदस्य और गैर-सदस्य होते हैं जिन्हें कंपनी विधि के प्रावधानों, प्रतिबंधों एवं सरकार द्वारा निर्धारित नीतियों के अधीन रहते हुए कार्य करना पड़ता है। जबकि भागीदारी में कारोबार का संचालन स्वयं भागीदारों द्वारा आपसी सहमति से किया जाता है जो अधिकारों एवं कर्त्तव्यों का निर्धारण स्वयं करते हैं। अतः यह आवश्यकता महसूस की गई कि कंपनी के समानांतर एक ऐसे व्यवसायिक संगठन का प्रादुर्भाव किया जाए जिसमें कंपनी के कतिपय गुण हों और साथ ही साथ भागीदारी के गुण भी हों अर्थात् उसका विधिक शाश्वम अस्तित्व हो, सदस्यों का दायित्व सीमित हो, वैधानिक जटिल औपचारिकताओं से मुक्त हो तथा सदस्य आपसी सहमति से प्रबंधन और प्रशासन कर सकें एवं छोटे विनियोगकर्ताओं, उद्यमियों, तकनीकीज्ञों, एवं सेवा प्रदाताओं के लिए सुगम एवं सुविधाजनक हो। इसी दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए भारत सरकार ने सीमित दायित्व भागीदारी अधिनियम, 2008 पारित किया है, जिसमें सीमित दायित्व कंपनी और परंपरागत भागीदारी फर्म की प्रमुख विशेषताओं को समेकित किया गया है। इस अधिनियम में कुल 81 धाराएँ हैं जिन्हें 14 अध्यायों में विभक्त किया गया है, इसके अतिरिक्त इसमें 4 अनुसूचियाँ भी दी गई हैं।

इस अधिनियम के अनुसार सीमित दायित्व भागीदारी के रूप में फर्म का पंजीयन कराना अनिवार्य है। पंजीयन के पश्चात् यह एक नियमित निकाय हो जाती है। जिससे शाश्वम उत्तराधिकार और भागीदारों का दायित्व सीमित हो जाता है। भागीदारों में हुए परिवर्तन का फर्म

के अस्तित्व पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।[1] अधिनियम द्वारा अपेक्षित शर्तें फर्म द्वारा पूरी की जा रही हैं या नहीं यह देखने के लिए अभिहित भागीदार की नियुक्ति का उपबंध है।[2] पारस्परिक करार के अभाव में इनके अधिकारों व कर्त्तव्यों का निर्धारण अधिनियम की अनुसूची 1 में बनाए गए नियमों के अनुसार होगा।[3] प्रत्येक भागीदार फर्म का अभिकर्ता होता है न कि भागीदारों का अभिकर्ता होता है।[4] फर्म की ओर से किए गए कार्यों के लिए फर्म उत्तरदायी होती है भागीदार नहीं, जब तक कि कोई कपट न किया गया हो।[5] यदि कोई संव्यवहार लेनदारों के प्रति कपटपूर्ण है तो इसके लिए फर्म का दायित्व असीमित होता है। फर्म को समुचित पुस्तकें एवं खाता बहिया रखना आवष्यक है।[6] फर्म को खाता एवं शोधन क्षम विवरण वर्ष में दो बार, एवं वालषक प्रतिवेदन तैयार करके[7] अंकेक्षित रूप में प्रतिवर्ष रजिस्ट्रार के पास भेजना आवश्यक है। रजिस्ट्रार के यहाँ जमा किया गया खाता एवं शोधन क्षम विवरण, वालषक विवरण, निगमन दस्तावेज़ आदि लोक दस्तावेज़ होता है और उसका निरीक्षण फर्म से संव्यवहार करने वाले किसी भी व्यक्ति द्वारा किया जा सकता है।[8] भागीदारों द्वारा फर्म में के अपने हित का अंतरण किया जा सकता है किंतु ऐसे अंतरण से भागीदार फर्म से पृथक नहीं होते और न ही अंतरिती फर्म का भागीदार हो जाता है।[9] केंद्रीय सरकार की अनुमति से विदेशी सीमित दायित्व भागीदारी फर्म की शाखा भारत में स्थापित की जा सकती है।[10] निजी कंपनी, असूचीबद्ध सार्वजनिक कंपनी एवं परंपरागत भागीदारी फर्म को सीमित दायित्व भागीदारी के रूप में परिवर्तित किया जा सकता है।[11] फर्म के कार्यकलापों का अन्वेषण कराने,[12] समझौता व ठहराव, पुनर्गठन एवं एकीकरण,[13] फर्म के परिसमापन एवं विघटन[14] से संबंधित व्यापक प्रावधान भी अधिनियम में बनाए गए हैं। किसी भागीदार की मृत्यु अथवा दिवालिया होने पर फर्म स्वतः समाप्त नहीं होती है क्योंकि फर्म को विधिक व्यक्तित्व प्रदान किया गया है।

जैसा कि ऊपर वर्णित किया गया है इस अधिनियम के अंतर्गत गठित की जाने वाली भागीदारी फर्म का पंजीयन कराना आवश्यक है। पंजीयन हो जाने के बाद फर्म एक विधिक व्यक्ति हो जाती है। वह अपने नाम से फर्म के समस्त कार्यों को करने की क्षमता रखती है। यदि कोई व्यतिक्रम किया जाता है तो इसके लिए या तो फर्म स्वयं अथवा भागीदारों के साथ उत्तरदायी होती है। यद्यपि फर्म एक निगमित निकाय है किंतु वह एक कृत्रिम व्यक्ति होती है जिसके पास अपना कोई भौतिक शरीर नहीं होता है, जिसके कारण वह स्वयं कार्य नहीं कर सकती है। अतएव उसके सभी कार्यों का निष्पादन व संचालन फर्म के व्यष्टि भागीदार फर्म के अभिकर्ता के रूप में करते हैं। ऐसे कार्यों के प्रति फर्म ही उत्तरदायी होती है न कि भागीदार। किंतु कतिपय परिस्थितियों में फर्म के कार्यों के लिए भागीदारों को भी उत्तरदायी बनाया गया है। अधिनियम के प्रावधानों के विरुद्ध कार्य किसके द्वारा किया गया है यह निश्चित करना बहुत कठिन हो जाता है विशेषकर उन परिस्थितियों में जहाँ फर्म के भागीदारों की संख्या अधिक हो और भागीदारी करार में सभी भागीदारों को कारोबार संचालन का अधिकार हो। अतः यह आवश्यक हो जाता है कि यह सुनिश्चित कर दिया जाए कि ऐसे कार्यों के लिए कौन

उत्तरदायी है, जिसके ऊपर वैधानिक रूप से कार्य हो रहा है या नहीं, देखने का भार हो, जो व्यतिक्रम की दशा में उत्तरदायी बनाया जा सके। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए इस अधिनियम में ऐसे व्यक्ति के नियुक्त किए जाने का प्रावधान किया गया है जिसे अभिहित भागीदार कहा जाता है। अभिहित भागीदार कौन हो सकता है, इसकी नियुक्ति कैसे की जाती है, इसके कौन से कर्त्तव्य हैं और इन कर्त्तव्यों के व्यतिक्रम किए जाने पर किस प्रकार का उत्तरदायित्व आरोपित किए गए हैं, आदि के बारे में इस शोधपत्र में विवेचन किया गया है।

1. अभिहित भागीदार की परिभाषा : सामान्य अर्थ में अभिहित भागीदार से तात्पर्य ऐसे भागीदार से है जिसके ऊपर यह देखने का दायित्व होता है कि अधिनियम के द्वारा अपेक्षित वैधानिक अपेक्षाएँ पूरी की जा रही हैं अथवा नहीं। उदाहरण के लिए खाता एवं शोधन क्षम विवरण, वार्षिक प्रतिवेदन आदि रजिस्ट्रार को प्रेषित किया गया या नहीं। दूसरे शब्दों में क्या फर्म के कारोबार के संचालन में वैधानिक अपेक्षाएँ पूरी हुई है या नहीं? देखने वाला अभिहित भागीदार कहा जाता है।

अधिनियम की धारा 2(1)ञ में अभिहित भागीदार को परिभाषित किया गया है। इस धारा के अनुसार अभीहित भागीदार ऐसा भागीदार है जो धारा 7 के अनुसरण में इस निमित्त निर्दिष्ट किया गया है। धारा 7 के अनुसार एक सीमित दायित्व भागीदारी में कम-से-कम दो अभिहित भागीदार होंगे, जो व्यष्टि होंगे एवं उनमें से कम-से-कम एक भारत का निवासी होगा। पुनः इस धारा में उपबंधित है कि व्यष्टि किसी ऐसी भागीदारी फर्म में सभी भागीदार निगमित निकाय हैं अथवा एक या अधिक व्यष्टि और निगमित निकाय हैं तो व्यष्टि अभिहित भागीदार होंगे। यदि व्यष्टि भागीदार एक है तो निगमित निकाय का नामिनी अभिहित भागीदार हो सकेगा। इस धारा के अर्थ में निवासी उसे माना जाएगा जो पूर्ववर्ती वर्ष में कम-से-कम 182 दिन भारत में रहा हो।

एक निगमित निकाय भागीदार हो सकता है किंतु अभीहित भागीदार के लिए यह अनिवार्य है कि वह केवल व्यष्टि ही हो। यहाँ यह प्रश्न उठता है कि अभिहित भागीदार एक व्यष्टि ही हो सकता है, निगमित निकाय अभीहित भागीदार नहीं हो सकता ऐसा क्यों? इस संबंध में अधिनियम में कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है। ऐसी ही समस्या कंपनी के मामले में निदेशक के बारे में है। कंपनी अधिनियम में उपबंध है कि निदेशक केवल व्यष्टि ही होगा। व्यक्तियों का संघ, कंपनी अथवा भागीदारी फर्म निदेशक नियुक्त नहीं किया जा सकता है। इस संबंध में उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्णीत वाद **ओरिएंटल मेंटल पेपर प्रेसिंग प्राइवेट लिमिटेड**[15] उल्लेखनीय है जिसमें स्पष्ट किया गया है कि क्यों एक व्यष्टि ही निदेशक नियुक्त किया जा सकता है, व्यक्तियों का संघ नहीं।

''निदेशक का कार्यालय न्यास का कार्यालय होता है। इसलिए ऐसे कार्यालय में कोई ऐसा व्यक्ति सदैव उपलब्ध होना चाहिए जो ऐसे न्यस्त कार्यों के प्रति उत्तरदायी ठहराया जा सके। जहाँ व्यक्तियों का समूह है अथवा निगमित निकाय है वहाँ ऐसे समूह द्वारा किए गए कार्यो

के प्रति कौन उत्तरदायी है सुनिश्चित करना बहुत कठिन होता है। जबकि व्यष्टि की दशा में ऐसी समस्या उत्पन्न नहीं होती है।''

चूँकि सीमित दायित्व भागीदारी में एक अभिहित भागीदार की स्थिति कंपनी में निदेशक के समान होती है अतएव उच्चतम न्यायालय द्वारा उपरोक्त मामले में व्यक्त किया गया विचार अभीहित भागीदार के संबंध में लागू करना न्यायोचित है।

2. अभीहित भागीदार की अर्हताएँ एवं निरर्हताएँ : एक अभिहित भागीदार के लिए कौन-सी अर्हताएँ होनी चाहिए इस संबंध में अधिनियम में कोई प्रावधान नहीं किया गया है किंतु यह उपबंधित है कि एक अभिहीत भागीदार को व्यष्टि होना चाहिए। केवल फार्म का भागीदार ही अभीहित भागीदार हो सकता है। अधिनियम की धारा 79 में केंद्र सरकार को शक्ति प्रदान की गई है कि वह अभिहित भागीदार की अर्हता और अनर्हता के बारे में नियम बनाए। चूंकि भागीदारी का सृजन संविदा के द्वारा होता है, इसलिए एक भागीदार के लिए यह आवश्यक है कि वह संविदा करने की क्षमता रखता हो, वह अवयस्क न हो, सक्षम न्यायालय द्वारा चित्तवृति न घोषित किया गया हो अथवा दिवालिया न घोषित किया गया हो अथवा दिवालिया न्यायनिर्णीत किए जाने हेतु आवेदन न किया गया हो।

इस अधिनियम की धारा 79 में प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए केंद्रीय सरकार ने सीमित दायित्व भागीदारी नियम, 2009 बनाया है। इसके नियम 9 में अधोवर्णित व्यक्ति अभिहित भागीदार के रूप में नियुक्त किए जाने के लिए अनर्ह घोषित किए गए हैं --

क. जो दिवालिया न्यायनिर्णीत किया गया हो।

ख. जो पिछले 5 वर्षों में लेनदारों के ऋणों का भुगतान निलंबित किया हो।

ग. जो पिछले 5 वर्षों में किसी नैतिक अपराध, जिसके लिए 6 माह से अधिक का कारावास हो, दोषसिद्ध किया गया हो।

घ. जो पिछले 5 वर्षों में इस अधिनियम की धारा 30 के अंतर्गत किसी नैतिक अपराध के लिए दोषसिद्ध किया गया हो।

3. अभीहित भागीदार की नियुक्ति : अधिनियम की धारा 7 (2) में अभिहित भागीदार की नियुक्ति की रीति के बारे में उपबंध बनाया गया है जो निम्नलिखित हैं --

क. ऐसा भागीदार, जिसका नाम निगमन दस्तावेज़ जो रजिस्ट्रार के यहाँ पंजीकृत हुआ है, में अभिहित भागीदार के रूप में उल्लिखित होता है, उसमें प्रत्येक ऐसे भागीदार का नाम, पता, व्यवसाय का उल्लेख भी होता है, प्रत्येक ऐसे भागीदार को निगमन दस्तावेज़ की एक प्रति देनी होती है।[16]

ख. यदि किसी फर्म में केवल दो ही भागीदार हैं और दोनों व्यष्टि हैं तो वे दोनो ही अभिहित भागीदार माने जाएँगे भले ही अभिहित भागीदार के रूप में उनका नाम उल्लिखित न हो।

ग. जहाँ निगमन दस्तावेज़ में अभिहित भागीदारों का नाम उल्लिखित नहीं है और भागीदारों की संख्या 2 से अधिक है वहाँ यदि भागीदारी करार में उपबंध हो कि भागीदार अभिहित भागीदार होगा तो नियमानुसार सभी ऐसे भागीदार अभिहित भागीदार होंगे।

घ. भागीदारी फर्म के निगमन के पष्चात प्रत्येक अभिहित भागीदार भागीदारी अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार अभिहित भागीदार नियुक्त किया जा सकेगा।

ड़. नियुक्त किया जाने वाला भागीदार यदि व्यष्टि है तो उसे नियुक्ति के पूर्व विहित प्ररूप में अभिहित भागीदार होने के लिए अपनी सहमति देनी होगी।

4. अभिहित भागीदार की पहचान संख्या : जो व्यष्टि भागीदार अभिहित भागीदार होना चाहता है उसे अपनी पहचान संख्या प्राप्त करना होता है। इस संबंध में सीमित दायित्व भागीदारी अधिनियम, 2009 के नियम 10 में उपबंध बनाया गया है।[17]

सीमित दायित्व भागीदारी फर्म का कोई भागीदार अथवा निगमित निकाय का नामिनी जो अभिहित भागीदार होना चाहता है तो उसे पहचान संख्या प्राप्त करने हेतु इलेक्ट्रानिक मीडिया द्वारा केन्द्रीय सरकार के यहाँ आवेदन करना पड़ता है जिस पर प्रमाणित फोटो लगा होना चाहिए। आवेदन प्राप्त होने के 30 दिन के अन्दर सरकार द्वारा पहचान संख्या जारी करना आवष्यक है यदि पहचान संख्या का आवेदन अस्वीकृत किया जाता है तो ऐसी अस्वीकृति की सूचना देनी आवष्यक है। एक व्यक्ति को केवल एक ही पहचान संख्या जारी किया जा सकता है जो संपूर्ण जीवन काल तक विधिमान्य रहता है। यह पहचान संख्या दूसरे व्यक्ति को जारी नहीं किया जा सकता है। अभिहित भागीदार का यह कर्त्तव्य होता है कि पहचान संख्या प्राप्त होने के 30 दिन के अंदर इसकी सूचना सीमित दायित्व भागीदारी फर्म को दे। सूचना प्राप्त होने के 7 दिन के अंदर फर्म द्वारा इसकी सूचना रजिस्ट्रार को देना अनिवार्य है। यदि कोई परिवर्तन होता है तो परिवर्तन की सूचना केंद्र सरकार को देनी पड़ती है। प्राप्त की गई पहचान संख्या को फर्म के समस्त दस्तावेज़ों पर लिखना आवष्यकत होता है।

5. अभिहित भागीदार के पदों में हुई रिक्ति को भरना : अधिनियम की धारा 9 उपबंधित करती है कि यदि किसी भी कारण से अभिहित भागीदारों की संख्या में रिक्ति होती है तो रिक्ति के 30 दिनों के भीतर सीमित दायित्व भागीदारी फर्म द्वारा रिक्त पदों को भरना होगा। नए नियुक्त किए जाने वाले अभिहित भागीदार के संबंध में धारा 7 की उपधारा 4 और 5 के नियम ही लागू होंगे। यदि रिक्त पदों को किन्हीं कारणों से नहीं भरा जाता है या किसी समय केवल एक अभिहित भागीदार है तो प्रत्येक भागीदार अभिहित भागीदार माने जाएंगे।

6. अभिहित भागीदार का उत्तरदायित्व : सीमित दायित्व भागीदारी अधिनियम, 2008 के द्वारा अभिहित भागीदारों के ऊपर यह दायित्व आरोपित किया गया है कि वह इस अधिनियम द्वारा उस पर आरोपित समस्त कार्य करे तथा यह देखे कि क्या इस अधिनियम द्वारा सभी अपेक्षाएँ पूरी हो रही है या नहीं। इस संबंध में धारा 8 उपबंधित करती है --

जब तक इस अधिनियम में अभिव्यक्त रूप से अन्यथा उपबंधित न हो, कोई अभिहित भागीदार --

(क) ऐसी सभी कार्यों, विषयों, और बातों को करने के लिए उत्तरदायी होगा जो सीमित दायित्व भागीदारी द्वारा इस अधिनियम के उपबंधों के अनुपालन की बाबत की जानी अपेक्षित है,

जिसके अंतर्गत इस अधिनियम के उपबंधों के अनुसरण में ऐसे किसी दस्तावेज़, विवरणी, विवरण और इसी प्रकार की रिपोर्ट को जो सीमित दायित्व भागीदारी करार में विनिर्दिष्ट किया जाए, फाइल करना भी है, और

(ख) उन उपबंधों के किसी उल्लंघन के लिए सीमित दायित्व भागीदारी पर अधिरोपित सभी शास्तियों के लिए दायी होगा।

उपरोक्त उपबंध के अधीन अभिहित भागीदार के कर्त्तव्यों के साथ-साथ उसको व्यतिक्रम हेतु दायित्वाधीन भी बनाया गया है।

इस अधिनियम द्वारा अभिहित भागीदारों पर अनेकों कर्त्तव्य आरोपित किए गए हैं जिन्हें वैधानिक कर्त्तव्य कहा जाता है। इन कर्त्तव्यों के व्यतिक्रम की दशा में इन्हें दायित्वाधीन भी बनाया गया है। सिविल दायित्व के अतिरिक्त दंडित किए जाने का उपबंध भी है। जिसमें न्यूनतम और अधिकतम दंड देने का प्रावधान भी है। किन्हीं कर्त्तव्यों के व्यतिक्रम की दशा में जुर्माना और किन्हीं कर्त्तव्यों के व्यतिक्रम के लिए कारावास और कतिपय दशाओं में दोनों से दंडित किए जाने का प्रावधान है। ऐसे कर्त्तव्यों और व्यतिक्रम की दशा में आरोपित आपराधिक दायित्वों के बारे में विवेचन निम्नवत किया गया है --

1. जहाँ केंद्र सरकार ने सीमित दायित्व भागीदारी फर्म के नाम में परिवर्तन करने का निर्देष दिया है किंतु उसका पालन नहीं हुआ है, तो अभिहित भागीदार पर कम-से-कम दस हज़ार रूपए और अधिकतम एक लाख रूपया जुर्माना लगाया गया है।[18]
2. जहाँ फर्म के भागीदार अथवा भागीदारों के नाम, पते में परिवर्तन हुआ है तो इसकी सूचना अभिहित भागीदार द्वारा रजिस्ट्रार को भेजना होता है किंतु यदि कोई व्यतिक्रम होता है तो ऐसे भागीदार को न्यूनतम दो हज़ार रूपए और अधिकतम पच्चीस हज़ार रूपए का जुर्माना देना होता है।[19]
3. अभिहित भागीदार पर यह कर्त्तव्य आरोपित किया गया है कि वह वर्ष में दो बार खाता और शोधन क्षम विवरण तैयार करे और हस्ताक्षरित रजिस्ट्रार के समक्ष प्रस्तुत करे। यदि व्यतिक्रम होता है तो उसे न्यूनतम दस हज़ार और अधिकतम एक लाख जुर्माने से दंडित किया जाएगा।[20]
4. अभिहित भागीदार का कर्त्तव्य होता है कि वह प्रत्येक वित्तीय वर्ष में वार्षिक प्रतिवेदन तैयार करके रजिस्ट्रार को प्रेषित करे अन्यथा न्यूनतम दस हज़ार रुपए और अधिकतम एक लाख रुपए का जुर्माना देय होगा।[21]
5. अधिनियम के प्रावधानों के पालन के अनुक्रम में यदि रजिस्ट्रार ने कोई सूचना आदि को माँगा है और उस सूचना को देने में व्यतिक्रम किया जाता है तो अभिहित भागीदार को न्यूनतम दो हज़ार रुपए और अधिकतम पच्चीस हज़ार रुपए का जुर्माना देना होगा।[22]
6. यदि अभिहित भागीदार भागीदारी अधिनियम के किन्हीं प्रावधानों का पालन नहीं किया है अथवा विवरणी, खाता दस्तावेज़ रजिस्ट्रार के पास जमा नहीं किया है अथवा रजिस्ट्रार

के निर्देष पर किसी दस्तावेज़ में संशोधन नहीं किया है अथवा पुनर्गठित दस्तावेज़ तैयार नहीं किया है तो रजिस्ट्रार द्वारा सूचना देने के 14 दिन के अंदर अभिहित भागीदार का कर्त्तव्य है वह निर्देश के अनुसार कार्य करे। अधिकरण रजिस्ट्रार के आग्रह पर समय बढ़ा सकता है और उस दौरान निर्देशन के अनुसार कार्य पूरा करना होगा अन्यथा व्यतिक्रम के लिए अभिहित भागीदार दायित्वाधीन होंगे।[23]

7. सीमित दायित्व भागीदारी के कार्य कलापों के अन्वेषण के दौरान यदि निरीक्षक सुसंगत समझता है कि अभिहित भागीदार ऐसी फर्म के संबंध में जिसमें वह भागीदार है उस फर्म का अन्वेषण करना आवश्यक है, तो वह केंद्रीय सरकार की अनुमति से ऐसा कर सकता है। सरकार ऐसी अनुमति देने के पूर्व अभिहित भागीदार को सुनवाई का अवसर देगा।[24]
8. अन्वेषण के दौरान अभिहित भागीदार का यह कर्त्तव्य है कि वह निरीक्षक का सहयोग करे। आवश्यकतानुसार निरीक्षक को आवश्यक सूचनाएँ, रजिस्टर, खाता बही उपलब्ध कराए। यदि ऐसा करने में व्यतिक्रम किया जाता है तो उसे न्यूनतम दो हज़ार रुपए और अधिकतम पचास हज़ार रुपए का जुर्माना देना होगा। यदि व्यतिक्रम जारी है तो प्रत्येक दिन के लिए न्यूनतम पचास रुपए और अधिकतम पॉच सौ रुपए का जुर्माना देय होगा।[25]
9. यदि निरीक्षक युक्तियुक्त कारणों से विश्वास करता है कि सीमित दायित्व भागीदारी अथवा उसकी सहयोगी फर्म जिसमें अभिहित भागीदार उस फर्म का भागीदार है के दस्तावेज़ों, रजिस्टरों, बुक्स को नष्ट अथवा संशोधन कर दिया जाना चाहिए, वह प्रथम श्रेणी मजिस्ट्रेट अथवा प्रेसिडेंसी मजिस्ट्रेट की अनुमति से दस्तावेज़ों, रजिस्टरों, बुक्स को अधिग्रहित कर सकता है।[26]
10. यदि अन्वेषण प्रतिवेदन में दर्षित किया गया है कि अभिहित भागीदार दोषी है तो उसे अभियोजित किया जाएगा और दोष सिद्ध होने पर वह समस्त व्ययों को केंद्र सरकार को प्रतिपूर्ति करेगा[27]
11. सीमित दायित्व भागीदारी और लेनदारों अथवा सीमित दायित्व भागीदारी और उसके भागीदारों के बीच किए गए समझौता और ठहराव को स्वीकृति प्रदान करने के पूर्व अधिकरण के समस्त सूचनाओं तथ्यों एवं गत वर्ष की वित्तीय लेखा की सत्यता को शपथपत्र द्वारा प्रस्तुत किया जाना आवष्यक है।[28] व्यतिक्रम की दशा में अभिहित भागीदार एक लाख रुपए के जुर्माने से दंडित किया जाएगा।
12. सीमित दायित्व भागीदारी के संबंध में अधिकरण द्वारा पुनर्गठन और एकीकरण के अंतर्गत संपत्ति और दायित्व को अंतरित करने का आदेश दिया गया है और यदि उस आदेश के पालन में कोई व्यतिक्रम होता है, तो अभिहित भागीदार एक लाख रुपए के जुर्माने से दंडित होगा।[29]

13. जब कोई अभिहित भागीदार अपराध दोबारा कारित करता है तो वह कारावास से दंडित किया जाएगा जहाँ कारित अपराध कारावास और जुर्माने से अथवा केवल जुर्माने से दंडनीय है वहाँ वह कारावास और जुर्माने की दोगुनी राशि से दंडित होगा।[30]

14. जहाँ इस अधिनियम के अंतर्गत सीमित दायित्व भागीदारी द्वारा कोई अपराध कारित किया गया हो और यह सिद्ध है कि ऐसा अपराध भागीदार और अभिहित भागीदार की मिलीभगत अथवा उसकी घोर लापरवाही के कारण हुआ है तो ऐसे भागीदार और अभिहित भागीदार के विरुद्ध अभियोजन कार्यवाही करके दंडित किया जाएगा।[31]

15. अधिनियम की धारा 73 के अनुसार यदि अपराध किसी भी व्यक्ति के लिए दंडनीय है तो ऐसे व्यक्ति में प्रकृतया अभिहित भागीदार भी आएगा और उसे भी दंडित किया जा सकेगा। जैसे अधिकरण द्वारा यदि कोई आदेश व्यक्ति के विरुद्ध पारित किया गया है तो माना जाएगा कि ऐसा आदेश अभिहित भागीदार के विरुद्ध भी है।

16. अधिनियम की धारा 74 में दंड का सामान्य उपबंध बनाया गया है। इस धारा के अनुसार इस अधिनियम में अपराध के लिए कम-से-कम पाँच हज़ार रुपए और अधिकतम पाँच लाख रुपए तक का जुर्माना लगाया जा सकेगा। यदि अपराध जारी है तो प्रत्यके दिन के लिए पचास रुपए का जुर्माना देना होगा।

17. अधिनियम की धारा 10 का संदर्भ देना आवश्यक होगा जिसमें उपबंध किया गया है कि यदि धारा 7 की उपधारा 4 का उल्लंघन करते हुए अभिहित भागीदार की नियुक्ति की गई है तो सीमित दायित्व भागीदारी और भागीदार को न्यूनतम पचास हज़ार रुपए और अधिकतम पाँच लाख रुपए का जुर्माना देय होगा। यदि धारा 5 के उपबंध का उल्लंघन किया गया है इसके लिए न्यूनतम एक हज़ार रुपए और अधिकतम एक लाख रुपए का जुर्माना लगाया गया है।

7. अभिहित भागीदार और कंपनी निदेशक में भेद : उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि व्यवसायिक संगठन का नवीन रूप : सीमित दायित्व भागीदारी, सीमित दायित्व वाली कंपनी से बहुत सीमा तक मिलती-जुलती है। फिर भी इन दोनों संगठनों में विभेद पाया जाता है। कंपनी में कंपनी का प्रबंध, एक स्वतंत्र निकाय, जिसे निदेशक मंडल कहते हैं, में न्यस्त होता है ऐसे निदेशक मंडल में प्राइवेट और सार्वजनिक कंपनी में क्रमशः 2 और 3 निदेशक होते हैं ऐसे निदेशक कंपनी के सदस्य होते हैं तथा ऐसे भी निदेशक हो सकते हैं जो कंपनी के सदस्य नहीं होते हैं जैसे स्वतंत्र निदेशक। सीमित दायित्व भागीदारी में प्रबंध की शक्ति कम-से-कम 2 अभिहित भागीदारों में निहित होती है जिन्हें फर्म का भागीदार होना अनिवार्य है जहाँ तक परंपरागत भागीदारी का प्रश्न है फर्म का प्रबंध संचालन सभी भागीदारों द्वारा किया जाता है। यद्यपि अभिहित भागीदार और कंपनी के निदेशक में समानता है किंतु इनमें अधोवर्णित भेद पाए जाते हैं --

1. अभिहित भागीदार के लिए आवश्यक है कि वह संबंधित फर्म का भागीदार हो जबकि कंपनी निदेशक के लिए कंपनी का सदस्य अथवा अंषधारी होना आवश्यक नहीं है क्योंकि निदेशक कोई भी व्यक्ति हो सकता है चाहे वह कंपनी का सदस्य अथवा अंषधारी हो या ना हो।
2. अभिहित भागीदार फर्म के कर्मचारी के रूप में नियोजित नहीं हो सकता है जबकि कंपनी निदेशक संबंधित कंपनी में कर्मचारी नियुक्त हो सकता है भले ही वह कंपनी का सदस्य अथवा अंशधारी क्यों न हो।
3. अभिहित भागीदार फर्म के कारोबार के संचालन में भाग लेने के कारण पारिश्रमिक पाने का हक़दार होता है बषर्ते सीमित दायित्व भागीदारी करार में पारिश्रमिक नहीं दिए जाने का उपबंध न हो जबकि कंपनी निदेशक को कंपनी अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार पारिश्रमिक पाने का अधिकार है।
4. फर्म के कारोबार का प्रबंध व प्रशासन कुछ भागीदारों द्वारा अथवा अभिहित भागीदारों द्वारा अथवा सभी भागीदारों द्वारा किया जा सकता है। कंपनी के मामले में निदेशक कंपनी के दिन प्रतिदिन के संचालन में भाग नहीं लेता है। प्रबंध निदेशक अथवा पूर्ण कालीन निदेशक ही दिन प्रतिदिन का कार्य संचालन देखता है। अभिहित भागीदार को यह देखने का उत्तरदायित्व होता है कि फर्म द्वारा वैधानिक औपचारिकताएँ पूरी की जा रही है या नहीं। यदि कोई व्यतिक्रम होता है तो अभिहित भागीदार उसके लिए उत्तरदायी होगा, अन्य भागीदार नहीं। जबकि कंपनी के मामले में ऐसा दायित्व कंपनी निदेशक पर होता है।
5. फर्म द्वारा यदि कोई कपटपूर्ण कार्य किया जाता है तो उसके लिए फर्म के भागीदार उत्तरदायी होते हैं चूँकि अभिहित भागीदार फर्म का भागीदार ही होता है इसलिए ऐसे कपटपूर्ण कार्य के लिए अभिहित भागीदार भी उत्तरदायी होता है। कंपनी के मामले में कपटपूर्ण कार्यों के लिए निदेशक दायी नहीं होता है बशर्ते वह ऐसे कपटपूर्ण कार्य में हितबद्ध न हो।
6. अभिहित भागीदार को नियमित अधिवेशन आहूत करना अनिवार्य नहीं है जबकि कंपनी निदेशक को 3 महीने में कम-से-कम एक बार और एक वर्ष में चार बार आहूत करना अनिवार्य है।
7. यदि फर्म के भागीदारों अथवा अभिहित भागीदारों में कोई परिवर्तन होता है तो उसकी सूचना भागीदार द्वारा अथवा अभिहित भागीदार द्वारा रजिस्ट्रार को दिया जाना अनिवार्य है। कंपनी के मामले में निदेशक मण्डल में हुए परिवर्तन के बारे में सूचना कंपनी द्वारा दिया जाना चाहिए।

शेष पेज 71 पर...

प्रो. प्रीति सक्सेना

जल संकट मानव अधिकार एवं मानव अस्तित्व में एक बाधा : बचाव एवं समाधान

मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा इस बात की गारंटी देती है कि सभी मनुष्य एक ऐसी सामाजिक और अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था के हक़दार हैं, जिसमें उनके अधिकारों और स्वतंत्रताओं को पूरी तरह से क्रियान्वयन किया जा सके। जल मानव जीवन के लिए आवश्यक है और संयुक्त राष्ट्र द्वारा इसे एक मौलिक मानव अधिकार के रूप में मान्यता दी गई है। सतत विकास लक्ष्य वर्ष 2030 तक विभिन्न सामाजिक, आर्थिक और पर्यावरणीय चुनौतियों का समाधान करने के लिए 2015 में संयुक्त राष्ट्र द्वारा अपनाए गए 17 वैश्विक लक्ष्यों का एक समूह है। एसडीजी 6 विशेष रूप से सभी के लिए जल और स्वच्छता तक पहुँच सुनिश्चित करने पर केंद्रित है। यह लक्ष्य मानव अधिकार के रूप में जल के महत्त्व को बताता है और स्थायी जल प्रबंधन की आवश्यकता पर जोर देता है। एस.डी.जी. में जल को मानव अधिकार के रूप में शामिल करना सतत विकास को प्राप्त करने में इसके महत्त्व को रेखांकित करता है। जल संबंधी चुनौतियों का समाधान करके, एस.डी. जी. स्वास्थ्य में सुधार, गरीबी कम करने, लैंगिक समानता को बढ़ावा देने, खाद्य सुरक्षा बढ़ाने, पारिस्थितिकी तंत्र की रक्षा करने और शांति और स्थिरता को बढ़ावा देने का प्रयास करते हैं। जल को एक क्रॉस-कटिंग तत्व के रूप में पहचाना जाता है जो विभिन्न अन्य एस.डी.जी. को प्रभावित करते है, जिससे सतत विकास एजेंडा की समग्र उपलब्धि के लिए मानव अधिकार के रूप में इसकी प्राप्ति महत्त्वपूर्ण हो जाती है।

जल के अधिकार पर नवंबर 2002 में, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों पर समिति ने सामान्य टिप्पणी नं 15 में कहा था कि मानव गरिमा में जीवन जीने के लिए जल का मानव अधिकार अपरिहार्य है। यह अन्य मानव अधिकारों की प्राप्ति के लिए एक पूर्व शर्त है। कमेंट नं. 15 ने जल के अधिकार को व्यक्तिगत और घरेलू उपयोग के लिए पर्याप्त, सुरक्षित, स्वीकार्य और भौतिक रूप से सुलभ और किफायती जल के लिए सभी के अधिकार के रूप में परिभाषित किया।

जल मानव जीवन के लिए आवश्यक तत्वों में से एक तत्व है और मनुष्य के लिए जल के बिना लंबे समय तक जीना संभव नहीं है। मानव शरीर को ठीक से काम करने के लिए जल की आवश्यकता होती है। शरीर के तरल पदार्थों के संतुलन को बनाए रखने, शरीर के

तापमान को नियंत्रित करने और विभिन्न शारीरिक प्रक्रियाओं को सुनिश्चित करने के लिए जल महत्त्वपूर्ण है। अच्छे स्वास्थ्य और उचित स्वच्छता बनाए रखने के लिए जल महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि स्वच्छ जल तक पहुँच दस्त, हैजा और टाइफाइड जैसी जलजनित बीमारियों को रोकने में मदद करती है। पर्याप्त जलयोजन के बिना, शरीर आवश्यक कार्य नहीं कर सकता है। जल की पर्याप्त आपूर्ति के बिना लोग अपनी बुनियादी जलयोजन आवश्यकताओं को पूरा नहीं कर सकते हैं जिससे निर्जलीकरण, बीमारी और यहाँ तक कि मृत्यु भी हो जाती है। अतः न सिर्फ मानव अधिकार वरन् मानव अस्तित्व के लिए भी स्वच्छ और सुरक्षित पेयजल तक पहुँच महत्त्वपूर्ण है। सुरक्षित जल, स्वच्छता और स्वच्छता तक पहुँच स्वास्थ्य और कल्याण के लिए सबसे बुनियादी मानव आवश्यकता है। एक रिपोर्ट के अनुसार तेजी से जनसंख्या वृद्धि, शहरीकरण और कृषि, उद्योग और ऊर्जा क्षेत्रों से जल की बढ़ती जरूरतों के कारण जल की माँग बढ़ रही है, अतः2030 तक अरबों लोगों की इन बुनियादी सेवाओं तक पहुँच नहीं होगी जब तक कि प्रगति चार गुना न हो जाए।

मानव अधिकार के रूप में जल के महत्त्व

पृथ्वी की लगभग 71 प्रतिशत सतह जल से ढकी हुई है। पृथ्वी पर बहुतायत में जल है पर अधिकांश जल या खारा है या सुलभ नहीं है। संयुक्त राष्ट्र (यूएन) द्वारा मानव अधिकार के रूप में जल के महत्त्व को विभिन्न घोषणाओं और अंतरराष्ट्रीय समझौतों से लगाया जा सकता है। इस संबंध में प्रमुख मील के पत्थरों में से एक 2000 में सहस्राब्दी विकास लक्ष्यों (एम. डी. जी.) को अपनाना था, जिसमें 2015 तक सुरक्षित पेयजल और बुनियादी स्वच्छता तक स्थायी पहुँच के बिना लोगों के अनुपात को आधे तक कम करने का लक्ष्य शामिल था। हालाँकि, मानव अधिकार के रूप में जल की स्पष्ट मान्यता 2010 में संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा एक प्रस्ताव को अपनाने के साथ आई। प्रस्ताव में कहा गया है कि जीवन के पूर्ण आनंद और सभी मानव अधिकारों के लिए सुरक्षित पेयजल और स्वच्छता तक पहुँच आवश्यक है। इसके अतिरिक्त संयुक्त राष्ट्र मानव अधिकार परिषद ने 2010 में एक प्रस्ताव अपनाया जिसमें सुरक्षित पेयजल और स्वच्छता के मानव अधिकार की पुष्टि की गई। प्रस्ताव में स्पष्ट किया गया कि जल का अधिकार सभी को बिना किसी भेदभाव के व्यक्तिगत और घरेलू उपयोग के लिए पर्याप्त, सुरक्षित, स्वीकार्य, भौतिक रूप से सुलभ और किफायती जल का अधिकार देता है।

जल व्यक्तिगत स्वच्छता, भोजन तैयार करने और स्वच्छता सुविधाओं के लिए आवश्यक है। मानव अस्तित्व के लिए स्वच्छ और सुरक्षित जल तक पहुँच महत्त्वपूर्ण है। स्वच्छ जल तक पहुँच जलजनित बीमारियों को रोकने में मदद करती है, जो विशेष रूप से बच्चों और बुजुर्गों जैसी कमजोर आबादी के लिए जानलेवा हो सकती हैं। जल तक पहुँच गरीबी उन्मूलन से निकटता से जुड़ी हुई है। जल तक विश्वसनीय पहुँच के बिना लोग, विशेष रूप से विकासशील देशों में अक्सर दूर के स्रोतों से जल इकट्ठा करने में महत्त्वपूर्ण समय और प्रयास

खर्च करते हैं। इससे शिक्षा, आय सृजन और आर्थिक विकास के अवसरों में कमी आती है। जल भोजन से पोषक तत्वों के पाचन और अवशोषण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। जल के बिना, पाचन तंत्र बेहतर ढंग से काम नहीं करता है, जिससे समग्र पोषण प्रभावित होता है। साथ ही जल मूत्र, मल और पसीने के माध्यम से शरीर से अपशिष्ट उत्पादों के उन्मूलन में शामिल है। जल पसीने और वाष्पीकरण के माध्यम से शरीर के तापमान को नियंत्रित करने में मदद करता है। पर्याप्त जल के बिना, अपशिष्ट उत्पाद शरीर में जमा होते हैं, जिससे स्वास्थ्य संबंधी समस्याएँ होती हैं। अतः जल मानव अस्तित्व के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।

भारत में जल संकट

जल संकट मानव अधिकार की राह में एक रुकावट है। जल की कमी कई चुनौतियों को प्रस्तुत करती है जो समुदायों, क्षेत्रों और यहाँ तक कि पूरे राष्ट्रों को प्रभावित करती हैं। आज विश्व के कई देशों में जल संकट है। संयुक्त राष्ट्र जल विशेषज्ञ कावेह मदनी कहते हैं 'पानी के मामले में ईरान दिवालिया होने के कगार पर पहुँच गया है और वह इससे बाहर नहीं निकल सकता। उसके पड़ोसी देशों की भी यही समस्या है। इस क्षेत्र में पानी दुर्लभ होता जा रहा है और भविष्य में पानी को लेकर विवाद बढ़ेगा।'

जल की अपर्याप्त आपूर्ति तब होती है जब आबादी की जरूरतों को पूरा करने के लिए पर्याप्त जल संसाधनों की कमी होती है। बढ़ती आबादी, विभिन्न क्षेत्रों (कृषि, उद्योग और घरों) से जल की बढ़ती माँग और जलवायु परिवर्तन-प्रेरित सूखे से जल आपूर्ति असमान पहुँच और वितरण के बीच बेमेल होना है, जिसके परिणामस्वरूप जल की कमी होती है। कुछ क्षेत्रों या समुदायों के पास स्वच्छ और सुरक्षित पेयजल तक सीमित या कोई पहुँच नहीं है, जबकि अन्य के पास अधिक प्रचुर मात्र में संसाधन हैं। यह सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक असमानताओं को बढ़ाता है और जल आवंटन पर संघर्ष पैदा करता है। भारत में जल संकट अधिक है परंतु मानव के समग्र स्वास्थ्य और कल्याण करने के लिए स्वच्छ और सुरक्षित जल तक पहुँच को प्राथमिकता देना महत्त्वपूर्ण है।

कई समाजों में महिलाओं और लड़कियों की जल संग्रह की प्राथमिक जिम्मेदारी होती है। उनके घरों के पास जल स्रोतों तक पहुँच की कमी उन्हें शारीरिक नुकसान के खतरे में डालती है, उनके शैक्षिक अवसरों को सीमित करती है और लैंगिक असमानताओं को कायम रखती है। मानव अधिकार के रूप में स्वच्छ जल तक पहुँच सुनिश्चित करने से महिलाओं को सशक्त बनाने और लैंगिक समानता को बढ़ावा देने में मदद मिलती है।

जल संकट का सीधा असर खाद्य से जुड़ा हुआ है। कृषि और खाद्य उत्पादन के लिए जल आवश्यक है। पर्याप्त जल आपूर्ति सिंचाई प्रणालियों का समर्थन करती है, फसल की पैदावार बढ़ाती है और पशुधन को बनाए रखती है। मानव अधिकार के रूप में जल की पहुँच खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने और भूख को दूर करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। आज सिंचाई के लिए आवश्यक है कि छोटी-छोटी सिंचाई परियोजनाएँ चालू की जाएँ। तालाब, कुंए

इत्यादि बनाए जाएँ किंतु उसके लिए जल होना आवश्यक है और जल की कमी के कारण उचित सिंचाई के अभाव में खाद्य संकट भी भीषण रूप ले रहा है। जल की कमी और जल संसाधनों पर विवाद संघर्ष और अस्थिरता का कारण बनते हैं।

भारत में सुरक्षित जल उपलब्ध कराने हेतु प्रयास

जल के अधिकार को कई देश के संविधानों में एक संवैधानिक अधिकार के रूप में शामिल किया गया है, जबकि भारत में, भारत के संविधान के अनुच्छेद 21, 39ख, 47, 51 क(छ) एवं 262 जल संबंधित प्रावधानों जैसे अधिकार, कर्त्तव्य, नीति निर्देशक तत्व इत्यादि के अंतर्गत ''जल के अधिकार" को स्पष्ट रूप से "जीवन के मौलिक अधिकार" में न्यायिक व्याख्या के माध्यम से पढ़ा गया है।

भारत में संसद द्वारा जल के अधिकार को सुरक्षित करने के लिए अंतरराज्यीय नदी जल विवाद अधिनियम, 1956, जल (प्रदूषण निवारण तथा नियंत्रण) अधिनियम, 1974 और पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986 भी मुख्य है। यदि हम भारत सरकार के प्रयासों को देखें तो सरकार ने अपनी आबादी को सुरक्षित जल उपलब्ध कराने के लिए कई कुछ उल्लेखनीय सरकारी योजनाएँ और कार्यक्रम लागू किए हैं। राष्ट्रीय जल नीति जो समय-समय पर संशोधित की गई है, के साथ ही वर्तमान में जल शक्ति मंत्रालय भारत सरकार, मुख्य रूप से सभी को स्वच्छ एवं सुरक्षित जल की व्यवस्था हेतु अपना कार्य कर रहे हैं। जल जीवन मिशन, राष्ट्रीय जल मिशन, हर घर जल, राष्ट्रीय शहरी पेयजल मिशन, राष्ट्रीय ग्रामीण पेयजल कार्यक्रम, राष्ट्रीय जल गुणवत्ता उप-मिशन, अटल भूजल योजना आदि कुछ सरकारी नीतियाँ, कार्यक्रम एवं मंत्रालय भारत की आबादी को जल संकट से बचने हेतु अपने प्रयास कर रहे हैं।

भारत में नीति आयोग द्वारा जल शक्ति मंत्रालय और ग्रामीण मंत्रालय के सहयोग से तैयार एक रिपोर्ट के अनुसार, भारत की शहरी आबादी 2030 तक 600 मिलियन तक पहुँचने की उम्मीद है और इसके जल आवश्यकता को पूरा करना एक बड़ी चुनौती होगी। रिपोर्ट के अनुसार भारत दुनिया की 17 प्रतिशत आबादी का घर है लेकिन केवल 4 प्रतिशत दुनिया के ताजा जल संसाधन भारत में है और एक बड़ी आबादी के लिए इन असमान रूप से छोटे संसाधनों का प्रबंधन करना एक कठिन कार्य है।

निष्कर्ष एवं सुझाव

जल एक सीमित संसाधन है, और इसका स्थायी प्रबंधन मानव एवं पर्यावरण के लिए महत्त्वपूर्ण है। जल को मानव अधिकार के रूप में मान्यता देना जल स्रोतों की रक्षा करने, जल संरक्षण को बढ़ावा देने और वर्तमान और आने वाली पीढ़ियों के लिए न्यायसंगत और टिकाऊ पहुँच सुनिश्चित करने की आवश्यकता, पर्यावरणीय स्थिरता, है एवं सतत विकास लक्ष्य का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि सभी की सुरक्षित और किफायती पेयजल, स्वच्छता सुविधाओं और स्वच्छता सेवाओं तक पहुँच हो। इसमें समान पहुँच प्रदान करना, जल की गुणवत्ता

में सुधार करना और जल के उपयोग की दक्षता में वृद्धि करना शामिल है। इन संकल्पों और लक्ष्यों को अपनाकर सरकारों, संगठनों और नागरिक समाज सहित अंतर्राष्ट्रीय समुदाय, स्वच्छ और सुरक्षित पेयजल तक पहुँच को बढ़ावा देना, स्वच्छता सुविधाओं में सुधार करके और न्यायसंगत जल प्रबंधन प्रथाओं को सुनिश्चित करके जल के मानव अधिकार की प्राप्ति की दिशा में काम करना है।

यह ध्यान रखना महत्त्वपूर्ण है कि जबकि संयुक्त राष्ट्र जल को एक मानव अधिकार के रूप में मान्यता देता है, इस अधिकार को लागू करने और पूरा करने की जिम्मेदारी अलग-अलग सरकारों की है। उनसे अपेक्षा की जाती है कि वे अपनी आबादी के लिए जल और स्वच्छता तक पहुँच सुनिश्चित करने के लिए उचित उपाय करें जो मानव अधिकार सिद्धांतों के अनुरूप हो।

जल संकट को हल करने के लिए स्थायी जल प्रबंधन प्रथाओं, बुनियादी ढाँचे में निवेश, जल संरक्षण उपायों, बेहतर शासन और अंतर्राष्ट्रीय सहयोग के संयोजन की आवश्यकता है। जल संसाधनों तक समान पहुँच सुनिश्चित करना, जल-कुशल प्रौद्योगिकियों को बढ़ावा देना, पारिस्थितिकी तंत्र की रक्षा करना और जल की कमी के प्रभावों को कम करने के लिए जल प्रशासन और वैकल्पिक जल स्रोत को बढ़ाना महत्त्वपूर्ण है। जल संरक्षण के महत्त्व के बारे में जागरूकता बढ़ाना और कुशल जल उपयोग, कुशल सिंचाई तकनीक के लिए प्रोत्साहन प्रदान करनाय जलाशयों, बाँधों, पाइप लाइनों और अपशिष्ट जल उपचार संयंत्रें सहित जल संग्रहीत करने और कुशलता से वितरित करने; जल के बुनियादी ढाँचे को उन्नत करने और बनाए रखने से रिसाव के कारण होने वाले जल के नुकसान को कम करने और जल की आपूर्ति की विश्वसनीयता में सुधार करना; वर्षा जल संचयन और भूजल संसाधनों को फिर से भरने के लिए स्थायी भूजल प्रबंधन प्रथाओं को लागू करना; प्रदूषण को कम करने और जल स्रोतों के क्षरण को रोकने के उपायों को लागू करना; एकीकृत जल संसाधन प्रबंधन से न्यायसंगत जल आवंटन सुनिश्चित करना; कमजोर आबादी का समर्थन और स्वच्छ और किफायती जल तक पहुँच सुनिश्चित करने के लिए सब्सिडी प्रदान करना; नियामक ढाँचे, संस्थागत क्षमताओं और हितधारकों की भागीदारी सहित जल शासन ढाँचे को मजबूत करना; बाढ़ और सूखे जैसी जल संबंधी आपदाओं के प्रभावों को कम करने के लिए योजनाएँ विकसित करना; अंतर्राष्ट्रीय सहयोग और सीमा पार जल प्रबंधन को बढ़ाना जैसी कुछ रणनीतियाँ हैं, जो जल की कमी को कम करने और स्थायी जल प्रबंधन सुनिश्चित करने में मदद कर सकती हैं।

❑

आकांक्षा गुप्ता

यूनिफॉर्म सिविल कोड : समान नागरिक संहिता

इन दिनों हम सभी जगह यूनिफॉर्म सिविल कोड अथवा समान नागरिक संहिता की चर्चा सुन रहे हैं।

हो भी क्यूँ न! आख़िर हमारे संविधान निर्माता बाबा भीमराव अंबेडकर का सपना पूरा करने की जिम्मेदारी हुमारे देश के यशस्वी प्रधानमंत्री ने अपने मजबूत कंधों पर जो ली है। अब आप सोचते होंगे कि भला यह बाबा साहिब का सपना कैसे हुआ? तो यहाँ सभी की जानकारी के लिए बता दूँ कि सामान नागरिक संहिता को हमारे संविधान में शामिल करने के सबसे बड़े वकील बाबा साहिब ही थे।

जब राजनीतिक कारणों से वे इसको संविधान में लागू नहीं कर पाए तो इन्होने इसको नीति निर्देशक तत्व (Directive principles of state policy) में शामिल कर दिया। नीति निर्देशक तत्व जनतांत्रिक संवैधानिक विकास के नवीनतम तत्व हैं अर्थात् वे नियम जो हमारे संविधान निर्माताओं ने तय किए हैं जिनके तहत भविष्य में बनने वाली सरकारों को देश के लिए कार्य करने हैं।

यह स्वत् ही स्पष्ट है कि समान नागरिक संहिता हमारे संविधान का अभिन्न भाग है एवम् पिछले 75 वर्षों में सरकारों का प्राथमिक दायित्व था इसको लागू करना, किंतु यह हो ना सका अब जब देश में पूर्ण बहुमत की मजबूत सरकार है तो ऐसा अपेक्षित है कि इस अमृत काल में देश के संविधान की यह माँग भी पूरी कर दी जाए।

आइए अब हम साझते हैं कि समान नागरिक संहिता आखिर है क्या? इसको देश के लिए इतना महत्त्वपूर्ण क्यूँ बताया जाता है? क्या यह किसी वर्ग विशेष के लिए है?

समान नागरिक संहिता देश के सभी नागरिकों की समानता पर विशेष बल देती है। इसके अनुसार देश के सभी नागरिकों के लिए समान अधिकार तथा समान नियम होंगे विशेष रूप से नियम जो विवाह, संतान तथा तलाक से जुड़े हुए होंगे।

वर्तमान स्थिति में हिंदू धर्म मानने वालों के लिए विवाह की न्यूनतम उम्र अलग तथा मुस्लिम धर्म मानने वालों के लिए अलग है। इसी तरह से कई धर्मों एवं कई आदिवासी समाजों में बहु-विवाह की भी अनुमति है।

समान नागरिक संहिता लागू करने से यह सभी विषमताएँ सामप्त हो जाएँगी। आप में से बहुत-से पाठकों को उलझन होती होगी कि यदि समान नागरिक संहिता संविधान का भाग

है तो इसका विरोध क्यूँ हो रहा है? कुछ पाठकों का सवाल यह भी हो सकता है कि जिस समान नागरिक संहिता की वज़ह से देश भर में दंगे होने की संभावना है उसको लागू ही क्यूँ करना? आखिर 75 वर्ष से भी तो चल ही रहा था।

एक हज़ार वर्षों की गुलामी के दौरान हमारे समाज में गरीबी, बेरोजगारी तथा निरक्षरता की वज़ह से बहुत-सी सामाजिक कुरीतियों ने अपने पैर पसार लिए थे। हमारा देश एक पुरुष प्रधान देश बन कर रह गया था बहुत-सी कुप्रथाओं ने जन्म ले लिया था।

इनमें से प्रमुख थीं -- बहु-विवाह, बाल विवाह, बेटी को विरासत में हिस्सेदारी ना देना, बेटी को शिक्षा का अवसर न देना, महिला-पुरुष के लिए तलाक के समान नियमों का ना होना आदि। देश के जागरूक वर्ग को इन सभी समस्याओं का भान था। इसलिए स्वतंत्र भारत की पहली सरकार की प्राथमिकता थी इन सभी कुप्रथा से देश को मुक्ति दिलाना। यह बहुत बड़ी चुनौती भी थी। क्यूँकि उसी समय देश ने विभाजन की त्रासदी झेली थी। विभाजन के बाद के दंगे झेले थे।

देश के प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू किसी भी तरह का जोखिम नहीं लेना चाहते थे। इसलिए तय हुआ कि हिंदू कोड बिल तो आएगा किंतु मुस्लिम समाज जो कि देश की दूसरी सबसे बड़ी आबादी थी उसको इन समाज सूधारों से अछूता ही रखा जाएगा। बस परेशानी की जड़ वहीं से शुरू हो गई। देश में एक चलन बन गया मुस्लिम तुष्टिकरण का। मुस्लिम समाज के अराजक तत्वों को भी यह संदेश मिला कि दंगे और अराजकता का भय दिखा कर वो सरकारों को झुका लेंगे।

किंतु इस पक्षपात का परिणाम इतना खघ्तरनाक होगा यह शायद तब की सरकारें समझ ना सकीं। आज जब 2023 में बैठ कर हम अपने देश को देखते हैं तो पाते हैं कि मुस्लिम वर्ग आबादी बढ़ाने में तो अव्वल रहा है किंतु बाकी हर क्षेत्र में पिछड़ गया है। हमारा देश जनसंख्या की आँकड़ों से अब दुनिया का सबसे बड़ा देश बन चुका है। इसमें मुस्लिम समाज का सबसे अधिक योगदान है किंतु बाकी सभी क्षेत्रों में मुस्लिम समाज बहुत पीछे रह गया।

शिक्षा, आर्थिक उन्नति, सामाजिक उन्नति जैसे पैमानों पर मुस्लिम युवा खरा नहीं उतर पाया। देश तो विकास के रथ पर बैठ कर आगे बढ़ गया किंतु मुस्लिम समाज उसका भागीदार बनना तो दूर अपितु अन्य वर्गों पर बोझ मात्र बन कर रह गया।

यह लेखिका नहीं कह रही अपितु आँकड़े कह रहे हैं। कारगर में बंद अपराधी सबसे अधिक संख्या में मुस्लिम समाज के ही हैं। हम सबने देखा कैसे कश्मीर में छोटे छोटे बालक स्कूल जाने की उम्र में थोड़े से पैसों के लालच में देश की ही फौज पर पत्थर फेंका करते थे। सारा देश जानता है कि अल्पसंख्यक होने के बावजूद जेलों में सबसे अधिक तादाद में मुस्लिम ही हैं।

अब सवाल उठता है आखिर ऐसा क्यूँ हुआ? जो हाथ देश को मजबूत बनाने के लिए उठने चाहिए थे वो पत्थर फेंकने के लिए क्यूँ उठे?

आइए आज हम इसका संपूर्ण विश्लेषण करते हैं। क्या होता है जब एक बेटी को उसके अपने ही पिता की संपाति से बेदखल कर दिया जाता है ?तब वह चाहा कर भी कभी अपने बुजुर्ग माता पिता की सेवा नहीं कर सकती है। क्या होता है जब किसी किशोर अवस्था की बालिका की शादी कर दी जाती है? जवाब -- उसका बचपन कच्ची उम्र में ही समाप्त हो जाता है। वो जीवन पर्यन्त आश्रिता ही रहती है क्यूंकी वह हर तरह की शिक्षा से वंचित रह गई।

क्या होता है जब कोई पुरुष एक पत्नी के होते हुए भी अन्य स्त्री से शादी करता है? जवाब -- यह अशिक्षित आश्रित महिला अपनी भावनाओं का गला घोंट कर सिर्फ जीवित रहना सीख लेती है।

क्या होता है जब एक शौहर अपनी पत्नी को एक तरफा तलाक दे कर घर से निकाल देता है? सिर्फ इसलिए की वो शौहर अपनी बीवी का भारण पोषण नहीं करना चाहता .जवाब -- समाज में महिलाओं के असम्मान की प्रथा शुरू हो जाती है।

क्या होता है जब यह परित्यक्ता स्त्री एक माता भी होती है? जवाब -- एक बालक अपने प्रारंभिक बचपन में अपने पिता का स्वार्थी चेहरा देखता है। एक टूटे हुए परिवार, टूटी हुई शादी से संस्कार शील संतान समाज को मिल सकती है।

हम सब जानते हैं कि संमाज से जो मिलता है मानुष वही समाज को लौटाता है।

जिसने अपनी माता को आर्थिक तंगी से जूझते हुए देखा होगा, भावनात्मक रूप से टूटा हुआ देखा होगा वह समाज को सिर्फ जहर ही दे सकता है।

आज हम महिलाओं के लिए 33 प्रतिशत आरक्षण की बात कर रहे हैं। बहुत अच्छी बात है। किंतु महिलाओं के आरक्षण के लिए पहले समाज को, देश को तैयार होना होगा। देश के हर वर्ग की महिला को समान अधिकार मिलें। उसके विवाह की आयु वहीं हो जो देश के मुख्य क़ानून ने तय की है। विवाह-विच्छेद की स्थिति में उसे भरण-पोषण का अधिकार हो। यह तभी संभव होगा जब देश में समान नागरिक संहिता लागू नहीं की जाएगी।

जय हिंद

❑

डॉ. नीति निपुणा सक्सेना

हमारा तिरंगा : हमारी जानकारी

हम भारतवासी का अभिमान ही तिरंगा है। क्या तिरंगे की बात केवल गणतंत्र दिवस और स्वतंत्रता दिवस पर ही की जानी चाहिए, ऐसा बिल्कुल नहीं है। आजादी के अमृत महोत्सव के अंतर्गत अब देश में घर-घर तिरंगा लाने की और फहराने की अनुमति दे दी गई है। भारत की शान का प्रतीक हमारा तिरंगा आजादी के अमृत महोत्सव में 'हर घर तिरंगा' अभियान प्रारंभ किया गया है यह शोध पत्र उसी के संबंध में है। यह शोध पत्र तिरंगे के बारे में हमारे नागरिकों को कितनी जानकारी है इस पर प्रकाश डालता है। तिरंगा जो भारतवर्ष की आन बान शान है यह तिरंगा 3 रंगों से मिलकर बना हुआ है इसीलिए इसे तिरंगा कहा जाता है यह सारे रंग विशिष्टता के प्रतीक हैं। केसरिया रंग देश की ताकत और साहस को व्यक्त करता है, सफेद रंग धर्म चक्र के साथ शांति और सच्चाई और शुचिता को दर्शाता है और हरा रंग देश की भूमि की उर्वरता, समृध्दि और विकास शुभता को प्रदर्शित करता है।

भारत का बहुत बड़ा सौभाग्य है कि आजादी के अमृत महोत्सव के अंतर्गत घर-घर तिरंगा हर घर तिरंगा अभियान के माध्यम से सभी को यह सौभाग्य प्राप्त हो रहा है कि वे अपने घरों में तिरंगा फहरा सकते हैं। यह हमारी एकता और हमारे राष्ट्र के प्रति सम्मान को प्रदर्शित करता है। यह तिरंगा ना सिर्फ हमारा ध्वज है बल्कि यह देश का सम्मान है, देश की आन है देश का मान है देश का स्वाभिमान है, इस ध्वज को फहराने के भी कुछ नियम हैं और यह नियम भारतीय ध्वज संहिता के अंतर्गत हैं।

हम भारत के नागरिक तिरंगा और अपनी ध्वज संहिता को कितना जानते हैं या ध्वज के बारे में हमारी जानकारी कहाँ तक है, यह इसी पर किया गया छोटा-सा एक सर्वेक्षण का परिणाम है।

ध्वज संहिता के कुछ आवश्यक बिंदुओं को आज हम देखते हैं।

यह सूर्योदय और सूर्यास्त के बीच ही फहराया जाता था किंतु भारतीय ध्वज संहिता को 2002 में संशोधित किया गया। अब पूरे दिन और रात में भी फहराने की अनुमति है। ध्वज संहिता को मुख्य रूप से निम्न भागों में विभाजित किया गया है। भाग एक में राष्ट्रीय ध्वज के सामान्य विवरण ध्वज के आकार प्रकार और बनावट के बारे में ही दिया गया है। राष्ट्रीय ध्वज का आकार आयताकार होना चाहिए और ध्वज की लंबाई-चौड़ाई का अनुपात तीन अनुपात

दो होना चाहिए, यह हाथ से काता हुआ, हाथ से बुना हुआ ऊन, कपास, रेशम, खादी, बुटीक से बना हुआ होगा।

संहिता का भाग 2 : सार्वजनिक निजी संगठन और शैक्षिक संस्थान के सदस्यों द्वारा राष्ट्रीय ध्वज की मेजबानी या प्रदर्शन उपयोग आम जनता निजी संगठन और शैक्षणिक संस्थाओं द्वारा राष्ट्रीय ध्वज के प्रदर्शन पर कोई प्रतिबंध नहीं होगा। प्रतीक और नाम (अनुचित उपयोग की रोकथाम) अधिनियम 1950 के उल्लंघन में ध्वज का उपयोग व्यावसायिक उद्देश्यों के लिए नहीं किया जाएगा।

ध्वज को किसी भी व्यक्ति या वस्तु की सलामी में नहीं झुकाया जाएगा, निजी अंत्येष्टि सहित किसी भी रूप में झंडे को पर्दे के रूप में इस्तेमाल नहीं किया जाना चाहिए। राष्ट्रीय ध्वज से बनी वेशभूषा या वर्दी या सामान किसी भी व्यक्ति द्वारा कमर के नीचे नहीं पहना जा सकता और न ही इसे कशीदाकारी या रूमाल, नैपकिन, अंडर गारमेंट आदि पर मुद्रित किया जाना चाहिए और प्रतिमा का स्मारक के लिए कवर के रूप में उपयोग नहीं किया जाना चाहिए। गणतंत्र दिवस एवं स्वतंत्रता दिवस जैसे राष्ट्रीय अवसरों पर ध्वज के अंदर फूल की पंखुड़ियाँ लगाने में कोई आपत्ति नहीं होगी।

झंडे को या ध्वज को जान-बूझकर भूतल को या पानी को छूने नहीं दिया जाना चाहिए। किसी भी बैठक के दौरान स्पीकर के डेस्क को ढकने या सज़ाने के लिए झंडे का इस्तेमाल नहीं किया जाना चाहिए। जब मोटर कार पर झंडा अकेला प्रदर्शित किया जाता है तो उसे सम्मान से फहराया जाना चाहिए जिसे बोनट के मध्य पर या कार के सामने दाएँ और मजबूती से चिपका दिया जाना चाहिए।

इसे हमेशा सीधा प्रदर्शित किया जाना चाहिए अर्थात् सबसे ऊपर केसरिया रंग का बेल्ट होना चाहिए। जब राष्ट्रीय ध्वज रखा जाता है तो राष्ट्रीय ध्वज के किसी भी स्थान के ऊपर, बगल में कोई अन्य ध्वज नहीं लगाया जा सकता है। जब ध्वज क्षतिग्रस्त या गंदी स्थिति में हो तो उसे ध्वज की गरिमा के अनुरूप किसी अन्य तरीके से व्यक्तिगत रूप से नष्ट कर दिया जाएगा।

कागज से बने झंडे का उपयोग जनता द्वारा महत्त्वपूर्ण राष्ट्रीय सांस्कृतिक ओर खेल आयोजनों के अवसरों पर किया जा सकता है लेकिन घटना के बाद कागज के झंडे को फेंकना या जमीन पर नहीं फेंकना चाहिए।

जब भी राष्ट्रीय ध्वज को प्रदर्शित किया जाता है तो इसे सम्मान की स्थिति में होना चाहिए। संहिता के भाग 3 में केंद्रीय और राज्य सरकार और उनके संगठन और एजेंसियों द्वारा राष्ट्रीय ध्वज की मेजबानी, प्रदर्शन या उपयोग जो ध्वज की सही प्रदर्शन का वर्णन करता है और ध्वज के दुरुपयोग पर प्रतिबंध लगाता है, कुछ महत्त्वपूर्ण प्रावधान इस प्रकार हैं : झंडे का इस्तेमाल किसी भी तरह से विज्ञापन में नहीं किया जाना चाहिए और ना ही जिससे झंडा फहराता हो उस पोल पर विज्ञापन का चिन्ह लगाना चाहिए।

संहिता के भाग 4 के अनुसार ध्वजारोहण या उतारते समय या जब ध्वज गुजर रहा हो तो सभी व्यक्तियों को ध्वज का सम्मान करना चाहिए और स्थिर खड़ा होना चाहिए। ध्वज को वाहन, ट्रेन या नाव के हुड पर किनारे या पीछे नहीं लपेटना चाहिए। जब दूसरे देश के झंडे के साथ सीधी रेखा में प्रदर्शित किया जाता है तो राष्ट्रीय ध्वज दाहिनी ओर होना चाहिए और जब राष्ट्रीय ध्वज दीवार पर दूसरे ध्वज के साथ क्रॉस में प्रदर्शित किया जाता है तो राष्ट्रीय ध्वज दाएँ ओर होना चाहिए। सार्वजनिक भवनों और सरकारी आवासों जैसे उच्च न्यायालयों, चेकपोस्ट, उप-राष्ट्रपति के आधिकारिक निवास, राज्यपालों द्वारा झंडा फहराया जा सकता है। राष्ट्रपति और उप-राष्ट्रपति आदि को ध्वज को मोटर कार ऊपर उपयोग का विशेषाधिकार है। जो कोई सार्वजनिक स्थान या किसी अन्य स्थान पर ध्वज जलाता है विरूपित करता है या विकृत करता है, रौंदता है, नष्ट करता है या अन्यथा राष्ट्रीय ध्वज की अवमानना करता है उसे 3 वर्ष तक की कैद या जुर्माना या दोनों से दंडित किया जा सकता है। प्रस्तुत शोध में परंपरागत शोध प्रविधि का उपयोग किया जा रहा है जिसमें विभिन्न लेख, आलेख, पुस्तक समाचार-पत्र आदि का विस्तृत अध्ययन किया गया है और उसके उपरांत प्रस्तुत शोध पत्र को विश्लेषणात्मक रूप से लिखा गया है।

आँकड़ों का संग्रहण

राष्ट्रीय ध्वज को लेकर जनमानस में कितनी जानकारी है, इस हेतु सर्वेक्षण किया गया। एक प्रश्नावली तैयार की गई जिसमें ध्वज के बारे में जानकारी तथा ध्वज संहिता की जानकारी, ध्वज के सम्मान के बारे में संविधान में कही गई मूल कर्त्तव्य की जानकारी को लेकर एक प्रश्नावली तैयार की गई। इस प्रश्नावली को आम लोगों से भरवाया गया। लोगों में 10 विद्यार्थी जिसमें लड़के और लड़कियाँ शामिल थीं तथा 10 महिलाओं जिसमें शिक्षित एवं अशिक्षित घर में रहने वाली तथा नौकरीपेशा महिलाएँ शामिल हैं तथा 10 पुरुष, जिसमें शिक्षित/अशिक्षित दोनों ही शामिल हैं एवं 10 बुजुर्गों से प्रश्नावली के आधार पर एक सर्वेक्षण किया गया।

राष्ट्रीय ध्वज की जानकारी को लेकर किए गए आँकड़ों के संग्रह की रिपोर्ट में पाया गया कि झंडे के रंग के बारे में सभी लोगों ने सही जवाब दिए हैं किंतु उन रंगों के क्या अर्थ हैं इसके बारे में 70 प्रतिशत ही सही जवाब प्राप्त हुए हैं। ध्वज के ने चक्र के बारे में केवल 50 प्रतिशत लोगों ने ही सही जानकारी दी। ध्वज संहिता एवं एवं ध्वज संहिता संशोधन के संबंध में किए गए प्रश्नों में लोगों की जानकारी कुछ कम थी। ध्वज संहिता संशोधन की जानकारी केवल 30 प्रतिशत लोगों को ही थी।

विश्लेषण एवं निष्कर्ष

राष्ट्रीय ध्वज के बारे में जानकारी के लिए की गई प्रश्नावली से प्राप्त निष्कर्ष के आधार पर यह कहा जा सकता है कि 52 परसेंट लोगों को ही देश के ध्वज के बारे में सही जानकारी है। अन्य सब लोग ध्वज का सम्मान तो करते हैं लेकिन समुचित जानकारी उनके पास नहीं

है। यह राष्ट्रीय ध्वज के प्रति अपना सम्मान जताना और उसकी जानकारी होना ही, देश के प्रति एकता और सम्मान दिखाने का सबसे अच्छा तरीका होता है और राष्ट्रीय अवसर, राष्ट्रीय ध्वज, प्रत्येक भारतीय नागरिक के लिए गर्व का क्षण है। प्रत्येक भारतीय को भारत के संविधान के द्वारा यह कर्त्तव्य अधिरोपित किया गया है कि न सिर्फ राष्ट्रीय अवसर पर राष्ट्रीय ध्वज का सम्मान करें बल्कि हमेशा ही मन, कर्म, वचन, विचार, भाव, आचरण से राष्ट्रीय ध्वज के प्रति अपना सम्मान प्रकट करें।

सुझाव

राष्ट्रीय अवसरों पर राष्ट्रीय ध्वज के फहराने के नियमों के बारे में जानकारी सेमिनार के माध्यमों से शिक्षण संस्थाओं में दी जा सकती हैं। संविधान दिवस पर चित्र संविधान की प्रस्तावना का वाचन किया जाता है, उसी तरह राष्ट्रीय ध्वज संहिता का भी वाचन किया जाना चाहिए। राष्ट्रीय ध्वज संहिता को पाठ्यक्रमों में जोड़ा जाना चाहिए। राष्ट्रीय ध्वज के संबंध में क्विज प्रतियोगिता का आयोजन किया जाना चाहिए। सरकारी कार्यालयों एवं संगठनों, जहाँ पर भी झंडा फहराया जाता है वहाँ पर ध्वज संहिता के बारे में विशेष जानकारी प्रकाशित और प्रसारित की जानी चाहिए।

❑

शोध-आलेख आमंत्रित

अतीव प्रसन्नता का विषय है कि विधि भारती परिषद् की 'महिला विधि भारती' शोध पत्रिका का अंक 120 (जुलाई-सितंबर, 2024) के प्रकाशन के साथ पत्रिका के तीस वर्ष पूरे हो जाएँगे। यह अंक 120 विशेषांक के रूप में प्रकाशित किया जाएगा जिसका विषय होगा 'भारतीय लोकतंत्र के 75 वर्ष।' अंतः सभी विषय विशेषज्ञ और चिंतकों से इस विषय के किसी पक्ष, आयाम आदि पर आलेख आमंत्रित किए जाते हैं। कृपया आलेख 30 अप्रैल, 2024 तक भेज कर अनुगृहीत करें।

-- सन्तोष खन्ना
प्रधान संपादक

डॉ. आशु खन्ना

विधि भारती परिषद् का भव्य सम्मान समारोह और पुस्तक/पत्रिका लोकार्पण

विधि भारती परिषद् का 2 दिसंबर, 2023 को हिंदी भवन में एक सम्मान समारोह और पुस्तक/पत्रिका लोकार्पण का कार्यक्रम बड़े भव्य तरीके से संपन्न हुआ। कार्यक्रम का शुभारंभ अतिथियों द्वारा दीप प्रज्ज्वलन के साथ डॉ. सपना दत्ता सक्सेना की सुमधुर स्वर में सरस्वती वंदना की प्रस्तुति से हुआ। मंच को सुसज्जित करने वाले महानुभावों में राष्ट्रीय राजधानी दिल्ली के लोकायुक्त तथा उच्च न्यायालय के पूर्व न्यायाधीश न्यायमूर्ति हरिश्चंद्र चंद्र मिश्र, लोक सभा के पूर्व महासचिव एवं भारत के प्रतिष्ठित संविधान विशेषज्ञ पद्‌म विभूषण डॉ. सुभाष कश्यप, पूर्व सांसद और संसदीय हिंदी परिषद की अध्यक्ष श्रीमती सत्या बहिन, उच्चतम न्यायालय के अधिवक्ता और उच्चतम न्यायालय बार काउंसिल के अध्यक्ष श्री आदिश अग्रवाल, उच्चतम न्यायालय के अधिवक्ता और सेंट थॉमस लॉ कॉलेज नोएडा के सलाहकार डॉ. के.एस. भाटी और पुस्तक के रचनाकार राजीव शर्मा, झारखंड उच्च न्यायालय के वरिष्ठ अधिवक्ता एवं विधि भारती परिषद् की महासचिव एवं 'महिला विधि भारती' पत्रिका की प्रधान संपादक डॉ. सन्तोष खन्ना थी।

कार्यक्रम का सुंदर और प्रभावी संचालन किया डॉ. सपन दत्ता सक्सेना ने। विधि भारती परिषद की संस्थापक -महासचिव एवं विधि भारती पत्रिका की संस्थापक-संपादक डॉ सन्तोष खन्ना ने विधि भारती परिषद् का संक्षेप में परिचय देते हुए बताया कि विधि भारती परिषद् की तीन दशक पहले वर्ष 1993 में स्थापना की गई थी जिसका मुख्य उद्देश्य जनता विशेष रूप से अपवंचित वर्गों और महिलाओं में उनके अधिकारों और कर्त्तव्यों तथा देश के क़ानूनों के प्रति भारतीय भाषाओं विशेष रूप से हिंदी के माध्यम से जागृति लाना था। इसके लिए विधि भारती परिषद् की पत्रिका 'विधि भारती' का लगभग 30 वर्ष से निरंतर प्रकाशन तो हो ही रहा है, साथ ही विधि भारती परिषद् विधि की अनेक पुस्तक प्रकाशित कर तथा समय-समय पर महत्त्वपूर्ण विषयों पर सेमिनारध् संगोष्टियाँ/वेबीनारों का भी आयोजन कर हिंदी के संवर्धन में योगदान देती आ रही है। इसके मंच से देश के उन नागरिकों का सम्मान भी किया जाता है जो किसी न किसी रूप में देश के निर्माण में सक्रिय हैं।

कार्यक्रम के आरंभ में झारखंड उच्च न्यायालय के वरिष्ठ अधिवक्ता श्री राजीव शर्मा की

पुस्तक ‘The Preamble : Our First Promise Nationhood and Brotherhood’ का मंचासीन मनीषियों द्वारा लोकार्पण किया गया। यह पुस्तक संविधान की उद्देशिका को समर्पित है जिसे रचनाकार नागरिकों की प्रतिज्ञाओं की संज्ञा देते हैं और वह चाहते हैं कि यह संवैधानिक प्रतिज्ञाएँ देश के बच्चों का संस्कार बने तांकि देश की भावी पीढ़ी एक बेहतर नागरिक बन देश को आगे बढ़ाने के लिए सदैव तत्पर रहे। मंचासीन मनीषियों ने श्री राजीव शर्मा की पुस्तक पर अपने अपने विचार व्यक्त करते हुए पुस्तक और राजीव शर्मा की भूरि-भूरि प्रशंसा की कि उन्होंने भारत के संविधान के प्रीएम्बल पर एक नये ढंग से लिखा है जो वस्तुतरू विरल प्रयास है अपितु अपने ढंग का यह पहला प्रयास है। इसके लिये लेखक साधुवाद के पात्र हैं।

तत्पश्चात, डॉ. संजीव कुमार के संपादन में इंडिया नेटबुक्स से प्रकाशित ‘अनुस्वार’ त्रैमासिक पत्रिका के विशेषांक का भी लोकार्पण किया गया जो मुख्यतः विधि भारती पत्रिका की संस्थापक-संपादक श्रीमती सन्तोष खन्ना के साहित्यिक, विधिक एवं अन्य कृतित्व पर आधारित है। इस कार्यक्रम में विधि भारती परिषद् की पत्रिका विधि भारती के ताजा अंक 117 का भी लोकार्पण किया गया।

इस कार्यक्रम के दूसरे चरण में हुए सम्मान समारोह में देश की जानी-मानी हस्तियों का सम्मान किया गया। वास्तव में विधि भारती परिषद् ने वर्ष 2001 से अपने मंच से विधि और न्याय के क्षेत्र में उच्च कोटि के योगदान देने और जीवन में सर्वोत्कृष्ट मानव मूल्यों की स्थापना करने वाले महानुभावों का सम्मान भी करती आ रही है। इस वर्ष 2022 का ‘राष्ट्रीय विधि भारती सम्मान’ इंदौर, मध्य प्रदेश के चमेली देवी इंस्टिट्यूट ऑफ लॉ की प्रिंसिपल डॉ. निशा केवलिया शर्मा को प्रदान किया गया जो देश की छात्र पीढ़ियों को विधि क्षेत्र में तैयार करने के लिए वर्षों से समर्पण भाव से संलग्न है। वर्ष 2008 में संस्थापित ‘राष्ट्र भारती’ सम्मान भी देश के उन समर्पित कर्मयोगियों को प्रदान किया जाता है जो किसी न किसी रूप में राष्ट्र को आगे बढ़ाने के लिए समर्पित भाव से सक्रिय हैं। वर्ष 2022 का राष्ट्र भारती सम्मान डॉ. पूरनचंद टंदन और उनकी सहधर्मिणी श्रीमती रेनू टंडन और डॉक्टर संजीव कुमार एवं उनकी सहधर्मिणी डॉ. मनोरमा को संयुक्त रूप से दिया गया क्योंकि डॉक्टर टंडन और डॉ. संजीव कुमार, इन दोनों की सहधर्मिणियाँ अपने पतियों के लिए प्रेरणा तो हैं ही, अपने व्यक्तिगत स्तर पर वह देश निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करती आ रही हैं। विधि भारती परिषद् की पति -पत्नी को संयुक्त रूप से राष्ट्र भारती सम्मान प्रदान करने के पीछे यही सोच थी कि जब पति-पत्नी दोनों देश निर्माण में सक्रिय हैं तो उनको संयुक्त रूप से राष्ट्र भारती सम्मान प्रदान करना एक स्वस्थ परंपरा का शुभारम्भ होगा और वास्तव में सभी ने विधि भारती परिषद् की इस रचनात्मक पहल को सराहा है क्योंकि यह एक प्रकार से महिला सशक्तिकरण की दिशा में अपनी तरह की अनोखी पहल है। राष्ट्र भारती सम्मान डॉ. स्नेह ठाकुर को भी प्रदान किया गया जो देश से दूर वर्षों से विदेश से कनाडा में रहकर हिंदी साहित्य और भारतीय संस्कृति के संवर्धन में एकनिष्ठ कर्मयोगी के रूप में समर्पित हैं। इसके अलावा, इस वर्ष 2022

के डॉ. अंतरराष्ट्रीय वागीश्वरी सृजन सम्मान से हेमलता बबली विशिष्ट को सम्मानित किया गया जो न केवल हिंदी साहित्य, हिंदी भाषा अपितु सिनेमा में अभिनय कर स्वयं को सार्थक सिद्ध कर रहीं हैं।

इस कार्यक्रम की एक अन्य उपलब्धि यह रही कि इस कार्यक्रम में पधारे एक व्योवृद्ध नागरिक श्री आचार्य द्रोणाचार्य पधारे थे जो अपनी विलक्षण कला से मंचासीन अतिथियों का नाम सज़ा कर लाये थे और उन्होंने उन नामों को मंच पर उपस्थित अतिथियों को भेंट किया और इसके लिए विधि भारती परिषद् की ओर से उनका मंचासीन मनीषियों द्वारा शाल ओढ़ाकर और पुस्तकों का पैकट भेंट कर उनका विधिवत् रूप से सम्मान किया गया। कार्यक्रम के अंतिम चरण में मंचासीन अतिथियों ने लोकार्पित पुस्तक एवं पत्रिकाओं पर अपनी सारगर्भित टिप्पणी करते हुए विधि भारती परिषद् की लंबे समय से की जा रही सेवाओं के लिए भूरि भूरि प्रशंसा की। मंचासीन अतिथियों और सभागार में भारी संख्या में पधारे सभी लोगों के प्रति आभार व्यक्त किया गया। एक बात उल्लेखनीय यह रही कि इस कार्यक्रम में लोग बहुसंख्या में पधारे थे और सभी ने इस कार्यक्रम के सफल संपन्न होने पर अपनी प्रसन्नता व्यक्त की।

❑

पेज 56 का शेष...

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि इस अधिनियम द्वारा प्रस्तुत किया गया व्यवसायिक संगठन 'सीमित दायित्व भागीदारी', निजी कंपनी और परंपरागत भागीदारी (असीमित दायित्व) का संयुक्त उच्चस्तरीय रूप है। प्रबंध के मामले में अभिहित भागीदार की नयी संकल्पना कंपनी में निदेशक और परंपरागत भागीदारी में भागीदारों के समतुल्य एक समेकित खोज है।

❑

संदर्भ

1-14. सीमित दायित्व भागीदारी अधिनियम, 2008 की धाराएँ क्रमशः 3, 7, 23, 26, 30, 34, 35, 36, 42, 59, 55-58, 53, 60, 63-65.

15. (1961)31 कंपनी केसेज, 143 कंपनी अधिनियम, 2013 की धारा 152

16. सीमित दायित्व भागीदारी अधिनियम, 2008 की धारा 11

17. कंपनी अधिनियम, 2013 की धाराएँ 153 से 158

18-31. सीमित दायित्व भागीदारी अधिनियम, 2008 की धाराएँ 17, 25, 34, 35, 38, 41, 46, 47, 48, 53, 60, 62, 70, 76.

32. कंपनी अधिनियम, 2013 की धारा 159 एवं कंपनी अधिनियम, 1956 की धारा 266 छ

अंकुर अग्रवाल

डॉ. प्रमोद कुमार की पुस्तक : 'सुप्रीम कोर्ट के 85 ऐतिहासिक निर्णय'

हिंदी साहित्य के सुप्रतिष्ठित साहित्यकार डॉ. प्रमोद कुमार अग्रवाल हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार में भी संलग्न है। वे विधि के क्षेत्र में हिंदी को स्थापित करने में अपना अप्रतिम योगदान दे रहे हैं। उनकी विधि क्षेत्र में साइबर विधि, उपभोक्ता विधि तथा भारत के संविधान पर कृतियाँ हैं। डॉ. अग्रवाल ने प्रस्तुत 'सुप्रीम कोर्ट के 85 ऐतिहासिक निर्णय' पुस्तक में उच्चतम न्यायालय के उन 85 मुख्य निर्णयों को संक्षिप्त एवं सरल भाषा में प्रस्तुत किया है जिन निर्णयों ने भारत की दिशा बदल दी।

इसके साथ-साथ पुस्तक में निर्णय से संबंधित संविधान के उन प्रावधानों, उपबंधों को भी अध्याय के प्रारंभ में दिया गया है ताकि पाठक को पुस्तक पढ़ते समय संविधान की पुस्तक को सामने न रखना पड़े। प्रत्येक निर्णय को तीन भागों में विभक्त किया गया है -- तथ्य, निर्णय तथा लेखक की राय। पुस्तक का कलेवर विस्तृत करने हेतु पुस्तक में कुछ अतिरिक्त मामले संक्षिप्त में भी उद्धृत हैं तथा विभिन्न महत्त्वपूर्ण विषयों पर भी निर्णय संश्लिष्ट रूप से दिए गए हैं। पुस्तक का वैशिष्ट्य है कि इसमें वर्षवार ख़ारिज कर दिए गए निर्णयों की सूची भी है ताकि पाठक या अधिवक्ता आज के दिन माननीय सुप्रीम कोर्ट द्वारा स्थापित विधि को किसी न्यायालय या अन्य स्थान पर प्रस्तुतीकरण में त्रुटि न कर सकें। यह सूची अद्यतन वर्ष 2021 तक देकर लेखक ने अपने परिश्रम एवं अध्यवसाय का परिचय दिया है। पुस्तक में वर्ष 2021 तक किए गए सभी संविधान संशोधनों की सूची भी दी गई है।

यह पुस्तक संघ लोक सेवा आयोग एवं राज्य की सिविल सेवा अभ्यार्थियों तथ क्लेट एवं जुडिशियरी परीक्षाओं के लिए तैयार कर रहे अभ्यर्थियों के लिए अत्यंत उपयोगी है। पर आजकल भारत का सुप्रीम कोर्ट इतना शक्तिशाली तथा क्षमताशील है कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उसका निर्णय प्रभावकारी है। अतः भारत का नागरिक को भी अपने शीर्षतम न्यायालय के आदेशों एवं निर्णयों से परिचित होना चाहता है और उसे होना भी चाहिए क्योंकि सुप्रीम कोर्ट के द्वारा दिया गया निर्णय ही हमारी राज व्यवस्था में अंतिम विधि है। प्रत्येक नागरिक का यह कर्त्तव्य है एवं यह माना जाता है कि वह अपने देश का क़ानून जानता है। इस दृष्टि से डॉ. अग्रवाल के इस प्रयास की सराहना करनी चाहिए। डॉ. अग्रवाल एक विधि-वेत्ता है तथा क़ानून में डी-फिल्

हैं। वे देश की विधि फर्मों में दस वर्ष तक कार्यरत रहे। इस कृति में केशवानंद भारती मुकदमा से लेकर अयोध्या मामले तक मुकदमों का संक्षिप्त प्रस्तुतीकरण दिया गया है। बीच-बीच में समान नागरिक संहिता पर शाह बानो बेगम मामले में सुप्रीम कोर्ट की टिप्पणी तथा पर्यावरण के संरक्षण हेतु एम.सी. मेहता मुकदमें भी दिए गए हैं। डॉ. अग्रवाल ने एक भारतीय प्रशासनिक अधिकारी होने के कारण, प्रशासन क्षेत्र में न्यायालय की पहुँच को स्थापित करते ए.के. क्रेपक मामला तथा प्रशासनिक सुधार हेतु टी.एस.आर. सुब्रमण्यन, प्रकाश सिंह मामले तथा भ्रष्टाचार निरोधक विनीत नारायण आदि मुकदमों को दिया है। यहाँ तक कि पुस्तक में बिमल प्रसाद दास मामला देकर भ्रष्टाचार के विरुद्ध ओड़ीसा के एक मुख्यमंत्री का संघर्ष दिखाया है। पुस्तक की भाषा सरल एवं बोधगम्य हिंदी है जो एक बहुत कठिन कार्य था।

अतः निश्चय ही प्रस्तुत कृति जहाँ उच्च प्रतियोगी परीक्षाओं में बैठने वाले अभ्यार्थियों के लिए आवश्यक है, वहीं यह कृति अधिवक्ताओं, विधि के अध्येताओं तथा भारत के सामान्य नागरिकों के लिए भी उपयोगी है।

डॉ. अग्रवाल अपने इस योगदान के लिए साधुवाद के पात्र हैं। आशा है कि इस पुस्तक को सराहा एवं पुरस्कृत किया जाएगा।

‘सुप्रीम कोर्ट के 85 ऐतिहासिक निर्णय’ **लेखक :** डॉ. पी.के. अग्रवाल, पूर्व संयुक्त सचिव, विधि एवं न्याय मंत्रालय, भारत सरकार, **प्रकाशक :** प्रभात एग्जाम, प्रभात प्रकाशन प्रा.लि., **पता :** 4/19, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-110002, वर्ष 2023, **कुल पृष्ठ :** 256, **मूल्य :** 275 रुपए।

❑

Dr. Radheshyam Prasad

Bhartiya Nagrik Suraksha Sanhita 2023 : An Evaluation from VICTIM Centric Prospective

1. INTRODUCTION

Criminal justice administration of India is governed by mainly three laws, Indian Penal Code, The Code of Criminal Procedure and Indian Evidence Act. These three laws were almost 150 years old, legislated during colonial era. These laws were unable to meet the new challenges of the contemporary period. These were meant to rule the country instead of giving complete justice to the people. It was felt since long to revamp these laws so all three Acts were repealed and brought three new Acts namely Bhartiya Nyay Sanhita, Bhartiya Nagrik Suraksha Sanhita and Bhartiya Sakshya Sanhita. Bhartiya Nagrik Suraksha Sanhita (hereafter called BNSS) is the new Code of Criminal procedure of India which contains 531 sections, BNSS provides the machinery for the detection of crime, apprehension of suspected criminals, collection of evidence, determination of the guilt or innocence of the suspected person, the imposition of appropriate punishment on the guilty person and other aspects of criminal justice administration. It was a step towards decolonisation in which 24 sections of the old Act was removed and total 09 new sections were added. It was also a mark of 75 years of independence to provide fair justice to the people of India.

The new code has been brought after long discussions with various stakeholders of the criminal justice system viz Judges of the Supreme Court, High courts, members of the parliaments, Bar Council of India, State Bar councils, 22 National Law Universities, members of IAS, IPS and various other agencies. It has prescribed new time limits for the completing of procedure for providing speedy justice, provisions of Zero FIR, e-FIR, investigation by forensic science laboratories (FSL), recognition of digital evidences, attachment of the property of absconded offenders, trial in absentia, new provision of bail and mercy petitions. It has also aimed to provide victim centric justice by facilitating ease of criminal justice but at the same time it has provided more powers to the police officials to detain the accused for investigation and provisions for seeking medical examination of the accused by the medical practitioners. It has also recognised the use of technology and artificial intelligence (AI) from the crime scene to the trial of the case. This paper has dealt with important changes in the criminal justice system as contained in the BNSS and examined how the new Code has brought victim centric justice as well as ease of doing justice. There is few criticism of the new code which has also discussed in this article.

2. IMPORTANT CHANGES BROUGHT IN BNSS, 2023

As mentioned above, many changes have been made in the criminal justice system through BNSS, 2023 to synchronise with the modern need of criminal justice delivery. Following important changes have been brought in the new Code.

2.1 EQUALITY OF ADMINISTRATION OF JUSTICE THROUGHOUT THE COUNTRY

Chapter II of the new code has abolished the post of Metropolitan Magistrate.[2] The following classes of criminal courts will be there throughout the country-

(i) Courts of Session;
(ii) Judicial Magistrates of the first class;
(iii) Judicial Magistrates of the second class; and
(iv) Executive Magistrates.

Section 8 of the old Code is abolished in the new code in order to bring the uniformity of criminal courts throughout the country.

2.2 DIRECTORATE OF PROSECUTION IN EVERY DISTRICT

BNSS has provisioned the directorate of prosecution in every district of the country and it will have Deputy Directors and Assistant Directors as the State Government thinks fit.3The eligibility criteria for the appointment of Director of Prosecution and Deputy Director of Prosecution have been changed. Now they will be required 15 years of practice as advocate in the court. A retired session Judge is also eligible for the appointment of Director of Prosecution and Deputy Director of Prosecution.[4]

2.3 PROVISION OF ZERO F.I.R.

Zero F.I.R. refers to a F.I.R. that is lodged irrespective of the area where the crime is committed. The police can no longer refuse to lodge that they have no jurisdiction.[5] Such a F.I.R. is then transferred to the police station that has the actual jurisdiction so that investigation can begin. It was demanded since long time. Zero FIR will be useful to start investigation immediately and to prevent loss of evidences. BNSS has also prescribed the similar provision as it was in the old Code that every information of the cognizable offence to be taken by the Police.[6]

2.4 PROVISION FOR REGISTRATION OF e-FIR

The new Code has allowed registering FIR through electronic mode of communication which will be acknowledged within three days. Such FIR shall be taken on record on being signed within three days, by the person giving such information.[7] This is welcome change but required necessary IT infrastructure and digitalization of the most of the police station of the country. 03 days time limit to sign by the person giving information is not sufficient especially giving from far away or remotely. However registering e-FIR will be a great help to the victims of rape and other cognizable offence to start investigation and speedy collection of evidences by the police.

2.5 PROVISION FOR PRELIMINARY ENQUIRY

A new provision in the form of section 173(3) is added in the new Code to enable police to conduct preliminary enquiry on receipt of information relating to the commission of any cognizable offence which is made punishable for 03 years or more but less than 07 years before registering F.I.R. While doing so the police in-charge of the police station will be required to take the prior permission from an officer not below the rank of Deputy Superintendent of Police, considering the nature and gravity of the offence –

(i) proceed to conduct preliminary enquiry to ascertain whether there exists a prima facie case for proceeding in the matter within a period of 14 days; or

(ii) proceed with investigation when there exist a prima facie case of cognizable offence.

"The requirement of preliminary inquiry to determine prima facie case would mean that the investigating agency can determine whether any case is made out or not even prior to investigation as per the provisions of the new Code. This would allow them discretion to refuse registration of FIR even upon disclosure of cognizable offence. The provision can be misused to harass victims / informants by giving wide discretion to investigating agency to refuse registration of FIR prior to investigation."[8]

2.6 NEW PROVISIONS ON ARREST

(i) Section 43 of the BNSS empowers the police to make arrest by handcuffing the accused of certain offences. The provision of section 46 of the old Code neither provided for the manner of making arrest or any guidelines on when arrestee may be handcuffed. The New Code provides that the police officer may, keeping in view the nature and gravity of the offence, use handcuff while making the arrest of a person or while producing such person before the court who is a habitual or repeat offender, or who escaped from custody, or who has committed offence of organised crime, terrorist act, drug related crime, or illegal possession of arms and ammunition, murder, rape, acid attack, counterfeiting of coins and currency-notes, human trafficking, sexual offence against children, or offence against the State.[9]

(ii) The new Code provides that no arrest should be made without prior permission of an officer not below the rank of Deputy Superintendent of Police in case of an offence which is punishable for imprisonment of less than three years and such person is infirm or is above sixty years of age.[10]

(iii) Under section 42 of the old Code, the person arrested can be released on his executing a bond, with or without sureties in case of committed or has been accused of committing a non bailable offence when his name and address is ascertained whereas in the New Code, the person arrested can be released on a bond or bail bond in such cases.[11]

(iv) The arrested person should be produced to the police within six hours of the arrest when made by the private person[12]. This time limit has been prescribed in the New Code whereas it was not there in the old Code.

(v) The new Code has stipulated a new requirement that information of arrest and place where the arrestee is held, should be given to the designated police officer in the district in addition to his relatives or friends or any other person named by the arrestee.[13]

2.7 DURATION OF POLICE CUSTODY INCREASED

An accused can now be detained more than 15 days if the investigation is not completed within 24 hours of arrest. The new Code has provided that police custody can be sought for a maximum period of 15 days. However, it also provides that the same may be taken either all at once or in a staggered manner. It further empowers the police to seek custody when it is sought in parts for an extended period which may be at any time during the initial forty days or sixty days, as the case may be[14].

There is apprehension of misuse of this new provision that the investigating agency may negate the bail granted to an accused by seeking custody in parts during the above period.

2.8 FORENSIC INVESTIGATION FOR OFFENCES PUNISHABLE WITH SEVEN YEARS OR MORE

To increase the quality of the investigation by the police, the new Code provides to take the assistance of Forensic Science laboratories (FSL) for the offenses carrying a minimum punishment of seven years imprisonment. In these instances, forensic experts are required to visit crime scenes for evidence collection, documenting the process, cause videography on mobile phones or any other electronic device. If a State lacks forensic facilities, it must seek and utilize such services from another State.[15] These experts are responsible for both evidence collection at crime scenes and documenting their procedures. This is the new provision incorporated first time the new Code and India will be the first country to have investigation by the taking help from FSL.

2.9 PROVISION FOR ATTACHMENT, FORFEITURE OR RESTORATION OF PROPERTY

An additional power to the Magistrate has been added in the new Code like the powers given to the Directorate of Execution (ED) and Adjudicating authority under the prevention of Money Laundering Act, 2002 (PMLA) to attach and forfeit the property of the person or persons in respect of those property, found to be the proceeds of the crime.[16] The Judicial Magistrate can use this power on the application of the police making investigation and has reason to believe whether before or after taking evidence that all or any of such properties are proceeds of crime. Before making attachment, the Magistrate will be required to serve the 14 days show cause notice to the person. Further, if the Court or the Magistrate finds the attached or seized properties to be the proceeds of crime, the Court or the Magistrate shall by order direct the District Magistrate to rateably distribute such proceeds of crime to the persons who are affected by such crime.[17]

Attachment or forfeit of the property of the proclaimed offender: Another change with respect to attachment of property is that the Court upon a written request from a police officer (not below the rank of Superintendent of Police or Commissioner of Police) can initiate the process of requesting assistance from a Court or authority in a contracting state for attachment or forfeiture of a proclaimed offender.[18]

"The constitutionality of such a provision may require to be relooked as such a provision would allow a magistrate to attach the property of the accused irrespective of whether the person accused of a crime has actually been held guilty of such crime or not. The attachment and distribution is allowed even at the stage of investigation. The provision is akin to punishment before trial as the person is deprived of his property without following procedure established by law. Moreover, this may overlap with the power of Directorate of Enforcement to attach properties under the PMLA".[19]

2.10 MEDICAL EXAMINATION OF THE ACUUSED

While the old Code mandates the medical examination of the accused in specific cases, including rape, carried out by a registered medical practitioner upon the request of a police officer not below the rank of Sub-Inspector, the BNSS expands this authority to any police officer irrespective of their level to request such an examination.[20]

2.11 RECORDING OF SEARCH AND SEIZURE THROUGH AUDIO-VIDEO ELECTRONIC MEANS

The new Code has enabled the process of conducting search of a place or taking possession of the any property by recording through any audio-video electronic means preferably cell phone and the police officer shall without delay forward such recording to the District Magistrate, Sub-divisional Magistrate or Judicial Magistrate of the first class.[21] This is an important positive development which will prevent illegal search and seizure, tampering with evidence, planting of evidence etc. This may also be counter-productive as a video recording of signing of a seizure memo may be admitted as proof of seizure even though the same is against the right against self-incrimination.

2.12 DIGITISATION OF THE PROCESS OF INVESTIGATION, INQUIRY AND TRIAL

The new Code has incorporated digitisation of the process at several stages. This process will provide ease of justice to the parties. Earlier, it has already been stated that the new Code has allowed registering FIR through electronic mode of communication which will be acknowledged within three days. Besides this, BNSS has allowed the digitisation of the process from investigation to trial stage which is as follow-

(i) Process of conducting search of a place or taking possession of the any property by recording through any audio-video electronic means preferably cell phone (as discussed in the proceeding heading).

(ii) Introduction of the definition of audio-video electronics[22] and electronic communication.[23]

(iii) Service of summons can now be made through electronic communication.[24] Copy of such electronic summons shall be attested and kept as a proof of service of summons.[25]

(iv) Service of summons to call witness may also be now directed through electronic communication in addition to and simultaneously by registered post addressed to witness at the place where he ordinarily resides or carries on business or personally works for gain.[26]

(v) Statement can also be recorded by way of audio-video means. In the offence of rape, the recording of statement of the victim can be conducted at the residence of the victim or in the place of her choice and as far as practicable by a woman police officer in the presence of her parents or guardian or near relatives or social worker of the locality and such statement may also be recorded through any audio-video electronic means including mobile phone.[27]

(vi) Supply of documents like copy of FIR, police report etc. to the accused can now be made in electronic form.[28]

(vii) The new Code has facilitated the accused's attendance via audio or video electronic means.[29]

(viii) Physical presence of accused is no more required for reading and explaining charges to him. The new Code has allowed charges to be read and explained even when accused is present in the court through audio-video electronic means.[30]

(ix) All trials, inquires and proceedings may also be held in electronic mode i.e., by use of electronic communications or use of audio video electronic means. These would include (a) issuance, service and execution of summons and warrant; (b) examination of complainant and witnesses; (c) recording of evidence in inquiries and trials; and (d) all appellate proceedings or any other proceeding.[31]

(x) If the accused is in custody, he shall be brought up to hear the judgment pronounced either in person or through audio-video electronic means.[32]

2.13 LIMITED SCOPE OF PEA BARGAINING

The new Code has retained the provision of plea bargaining (sentence bargaining) but fixed a time limit for filling of application by the accused. Such application must be filed within a period of 30 days from the date of framing charge in the court.[33] Further, the new Code has also provided maximum 60 days period for the public prosecutor/complainant and accused to work out a mutually satisfactory disposition.

2.14 INQUIRY, TRIAL OR JUDGMENT IN ABSENTIA OF PROCLAIMED OFFENDER

A new provision has added in the new Code that when a person declared as a proclaimed offender, whether or not charged jointly, has absconded to evade trial and there is no immediate prospect of arresting him, the Court must, after recording reasons in writing, in the interest of justice, proceed with the trial in the like manner and with like effect as if he was present, pronounce the judgment. Provided that the Court shall not commence the trial unless a period of ninety days has lapsed from the date of framing of the charge.[34]

2.15 RESTRICTION ON GRANT OF BAIL

The new Code has provided that no bail will be granted to an offence for which punishment of either death or life imprisonment has been specified as punishment.[35] Earlier, in the old Code, it was possible only in the case of death punishment under section 437-A. On the other hand, liberal approach has been adopted with the first time offender. Such person must be released on bail by the court, if he has undergone detention for the period extending up to one third of the maximum period of imprisonment specified for such offence under that law.[36] Further where an investigation, inquiry or trials in more than one offence or in multiple cases are pending against a person, he must not be released on bail by the Court.[37]

2.16 TIME LINE FOR PROCEDURE

In order to facilitate the speedy justice, the new Code has prescribed time line for the following procedures-

(i) The Session Judge is required to frame in writing a charge against the accused within a period of 60 days from the date of first hearing on charge if he in opinion that there is ground for presuming that the accused has committed an offence which is exclusively triable by the court of session.[38]

(ii) Time limit for sending copy of records gathered either in document or audio-video electronic form during search by the police officer to the Magistrate empowered to take the cognizance is 48 hours.[39]

(iii) Report of medical examination of victim of rape is now required to be submitted within seven days from the date of examination by the registered medical practitioner,[40] whereas in the old Code, it was required to submit ‘without delay’.[41]

(iv) The Judgment in every trial in any Criminal Court of original jurisdiction cannot be kept pending for longer period and it should pronounced in open Court by the presiding officer immediately after the termination of the trial or at some subsequent time not later than forty five days.[42]

(v) The maximum time limit for supply of copy of police report and other documents to accused has been stipulated. It is the duty of the Magistrate to provide without delay and in no case beyond 14 days from the date of production or appearance of the accused.[43]

(vi) Commitment of case to Court of Session when offence is exclusively triable by it (Committal Proceedings) is also made time bound. It is to be completed within a period of 90 days from the date of taking cognizance, and such period may be extended by the Magistrate for a period not exceeding 180 days for the reasons to be recorded in writing.[44]

(vii) Time limit has been stipulated for making application for discharge. Accused will be required to file for discharge within 60 days from the date of committal under section 232 of the new Code.[45]

(viii) Framing of charges against the accused is now, required be made within a period of 60 days from the date of first hearing on charge.[46]

(ix) Limits on adjournments: maximum two adjournments may be granted by the court where the circumstances are beyond the control of a party.[47]

(x) Time limit for pronouncement of judgment of acquittal or conviction is now prescribed 30 days after completion of argument; however it can be extended up to 45 days in specific cases and reason of doing so, should be recorded.[48]

2.17 PROTECTION TO WITNESS

The new Code has provided the witness protection scheme first time. It has provided that every State Government will prepare and notify a witness protection scheme for the State with a view to ensure protection of the witnesses.[49] Although no guideline is given but every State Government will act towards the preparation of the same.

2.18 PROVISION FOR MERCY PETITION

The new code has modified some of the provision of mercy petition in death sentence to the President or Governor of the State.[50] A convict under the sentence of death or his legal heirs or any other relative may file a mercy petition within a period of 30 days of information received about the dismissal of the appeal or special leave to appeal by the Supreme Court or confirmation of the death by the High Court. Further, the order of the President or of the Governor made under article 72 or article 161 of the Constitution cannot be challenged in the court and it will be final.[51]

3. VICTIM CENTRIC APPROACH

The new Code has, first time, recognized the victim's right. It has been made obligatory for the Police to inform the victim about the progress of investigation within 90 days.[52] Similarly the Magistrate is also duty bound to supply the copy of F.I.R. police reports and all other documents to the victim if represented by the advocate within 14 days from the date of production or appearance of the accused.[53] This will enable the victim to know the accusation of the accused and progress of the investigation. But the new code is salient if victim is not represented by the advocate. Another important change is brought that the prosecution cannot be withdrawn without giving opportunity of being heard to the victim.[54] In this way victim will also take part in the process so that injustice could not be caused. Withdrawal of prosecution will be possible only when the victim is heard. This has fulfilled the much needed demand of victim participation in the criminal justice process. However, the new Code does not provide for rights of victim at the stage of sentencing like right to submit a victim impact statement, right to be informed of rights of victims at various stages of prosecution and trial, and right to be heard prior to granting pardon. All the provisions of victim compensation under section 357 and 357A of the Code of 1973 have also been given place in the new Code.[55] Provision of Zero F.I.R. will also help victim. Now, F.I.R. can be registered irrespective of the area where the crime is committed. The police can no longer refuse to lodge that they have no territorial jurisdiction. The Apex Court has also directed to the police to lodge F.I.R. when the information is related with commission of a cognizable offence by the complainant.[56] This will caused to start investigation immediately by police and victim will get protected.

4. CONCLUSION

Bhartiya Nagrik Nyay Sanhita has brought several changes, as discussed above, to bring ease of justice. Considering the huge pendency of the court cases it was desired to adopt steps for speedy justice. The time bound justice delivery process will definitely provide relief. Number of adjournments has been curtailed and focussed on delivery of justice rather than merely punishing the accused. Inclusion of digitalization in the lodging first information report, investigation and trial will also make the criminal justice system easier, speedy and less cost effective. The provision of e-FIR is welcome change but required necessary IT infrastructure and digitalization of the most of the police station of the country. 03 days' time limit to sign such FIR by the person giving information is not sufficient especially giving from far away or remotely. However registering e-FIR will be a great help to the victims of rape and other cognizable offence to start investigation and speedy collection of evidences by the police. This will protect the privacy of the victims especially the rape victims. Thus the new code has recognised all the three important rights of victim viz participatory rights, right to information and right to compensation (rehabilitation). Participation of the victim in case of withdrawal of the prosecution, information of progress of investigation, supply of copies of FIR, police reports etc. to the victim are appreciable steps. Compensation, and rehabilitation of the victim are also been taken care. Altogether, it is an attempt to replace the law of colonial era.

❑

References

1. Speech of Shree Amit Shah, Home Minister of India in Lok Sabha dated 20/12/2023
2. Section 6 of the BNSS, 3. Section 20 of the BNSS, 4. ibid, 5. Section 173(1) of the BNSS, 6. ibid
7. Section 173(1)(ii) of BNSS
8. https://www.azbpartners.com/bank/decoding-the-new-made-in-india-code-of-criminal-procedure-bharatiya nagarik-suraksha-second-sanhita-2023/#_ftnref7 (visited on 09/01/2024 at 1300hrs)
9. Section 43(3) of BNSS, 10. Section 35(7) BNSS, 11. Section 39 BNSS, 12. Section 40 BNSS, 13. Section 36 and 48 BNSS , 14. Section 187(3) BNSS, 15. Section 176(3) BNSS
16. Section 107 BNSS. Proceeds of crimes means any property derived or obtained directly or indirectly, by any person as a result of criminal activity (including crime involving currency transfers) or the value of any such property [s. 111 (c) BNSS]
17. Section 107 (6) BNSS, 18. Section 86 BNSS
19. https://www.azbpartners.com/bank/decoding-the-new-made-in-india-code-of-criminal-procedure-bharatiya nagarik-suraksha-second-sanhita-2023/#_ftnref7 (visited on 09/01/2024 at 1300hrs)
20. Section 51(1), 21. Section 105, 22. S. 2(1)(a), 23. S. 2(1)(i), 24. Proviso of S. 64(1)
25. S. 70, 26. S. 71, 27. S. 176, 28. S. 230 and 231, 29. S. 355(2) explanation
30. S. 251, 31. S.530, 32. S. 392(5), 33. S. 290, 34. S. 356
35. S. 479, 36. First Proviso of S. 479, 37. S. 479 (2), 38. S. 251 (1) (b), 39. S. 185(5), 40. S. 184 (6), 41. S. 164-A of the Cr. P.C. (old Code), 42. S. 392(1)
43. S. 230
44. First proviso of S. 232, 45. S. 250, 46. S. 263,
47. Fourth proviso of s. 346 (2), 48. S. 258
49. S. 398, 50. S. 472, 51. S. 472(7), 52. S. 193(3), 53. S. 230, 54. S.360, 55. S. 396
56. Lalita Kumari v. Uttar Pradesh (2014)2 SCC 1

Dr. Neema Qamar

The Vanishing Judicial Ethics and Problem of Accountability : Structuring a Workable Approach

1. Introduction

The Judiciary serves a unique role in the social framework. In the public mind, it is the judge who is the primary guardian of justice and the impartial arbiter of disputes between individual litigants. It has been said that the legitimacy of the entire judicial process as an impartial system for the administration of justice ultimately rests on the absolute confidence of the public in the rationality and integrity of individual judges. In a nation, which has about 700 judges in the higher judiciary, however, it is only realistic to posit that a few of those judges will not act with rationality of integrity. Instances of improper judicial behavior or serious misconduct in office do occur; Instances of judicial disability due to physical and mental incompetence are not unknown.

In India, now-a-days, the perception of the legal fraternity towards judiciary is of noble institution slowly decaying from the inside and crumbling under its own weight. Long delays in justice dispensing system, reluctance of judges to be accountable, rumors and whispers of judges involvement in worst kind of malpractices, all these factors are slowly eroding the faith of people in the higher judiciary as the last hope of an honest men.

The purpose of this research paper is to examine how far the judge is following the standards of judicial ethics and what measures are required to make the judge accountable, maintaining with the independence of judiciary, and to win back the people's faith.

Code of Ethics :

Legal ethics[1] denotes that body of principles by which the conduct of members of the legal profession *e.g.* lawyers, advocates, judges is controlled. More specifically and practically considered legal ethics may be defined as that branch of moral science which treats of the duties which an advocate and a judge own to his clients, to the courts, the bar, and to the public[2]. Codes of ethics are considered as important agencies for social control. They have been formulated for also legal profession. The Code of professional ethics for lawyers is made by the Bar Council of India which has been empowered by the Indian Advocate Act. But, Code of Judicial Ethics has not codified still now in India. Canons of ethics are just as essential for judges as for the advocates. Each judge should not be left to determine for himself what is proper and what is not proper. A uniform standard assisted materially in the right administration of justice.

Recent Trend in Quest of Judicial Ethics Code : Canons of Judicial ethics have been attempted time and again to be drafted as a code. Several document of authority are available as drafted or crafted by several fora at the national and international level. The fact remains that such a code is difficult to be framed and certainly cannot be consigned to a straitjacket. Mostly, these canons have originated in and have been handed down by generation after generation of judges by tradition and conventions. Here, it is necessary to refer two important documents regarding code of judicial ethics:-

1. Restatement of Values of judicial Life adopted by the Chief Justices conference of India, 1999;
2. The Bangalore principles of judicial conduct, 2002.

1. Restatement of Values of Judicial Life (1999) :

On May 7, 1997 the Supreme Court of India in its full court adopted a charter called the "Restatement of value of judicial Life" to serve as a guide to be observed by judges essential for independent strong and respected judiciary, indispensable in the impartial administration of justice. This resolution was preceded by a draft statement circulated to all the High Courts of the country and suitable redrafted in the light of suggestions received. It has been described as the "restatement of the pre-existing and universally accepted norms, guidelines and conventions", observed by judges. It is a complete code of the canons of judicial ethics. These are only the restatement of the values of judicial life and are not meant to be exhaustive but illustrative of what is expected of a judge.

The Above "restatement" was ratified and adopted by Indian judiciary in the chief justice conference 1999. All the High Courts in the country have also adopted the same in their respective full court Meetings.

2. The Bangalore Draft Principles(2002):

The preamble to the Bangalore principle of judicial conduct states *interalia* that the principles are intended to establish standards for ethical conduct of judges. They are designed to provide guidance to judges and to afford the judiciary a framework for regulating judicial conduct. They are also intended to assist members of the executive and the legislature, and lawyers and the public in general, to better understand and support the judiciary.

These principles presuppose that judges are accountable for their conduct to appropriate institutions established to maintain judicial standards, which are themselves independent and impartial, and intended to supplement and not to derogate from existing rules of law and conduct which bind the judge.

2. Role in the judiciary: Vanishing Judicial Ethics

Now-a-days, corruption of higher judiciary has become common phenomenon of world and has created a great anxiety for their people who believe in the judiciary as a last resort of justice. The judges are challenged, time to time, for there recusal misconduct and misbehaviour. The decline in the moral ethics of judges of higher judiciary (constitutional Courts) in India is visible, visceral and venomous. And what we are witnessing is the transformation of the country in to a predatory society, where the corrupt and there enforcers prey on the hopeless and the hapless. There has been a central loss of character among the judges of higher courts. It is necessary to discuss some such shocking instances which have come to light since independence of India of misconduct of judges of higher judiciary.

Justice Sinha's case[3]: In early days of independence an enquiry against Jusice S.P. Sinha, a judge of Allahabad High Court was inquired into by the Privy Council under the provision of the Government of India Act, 1935 (The Govt. of India Act,1935, Sec.220(2)(b)). The procedure was started at the instance of Sir Tej Bahadur Sapru and other advocates of Allahabad H.C. Bar. The Chief Justice of Allahabad wrote a letter to Pt. Nehru, the P.M. of India and had several times telephonic talks with him, Mr. Justice Sinha also met Pt. Nehru on the instance of the Chief Justice, Pt. Nahru advised the C.J. to follow the law and take action according to law. The C.J. stopped assigning any work to Justice Sinha. The C.J. framed the charges against, Justice Sinha and sent it to Governor General of India, who in turn referred it to the federal court of India. The Court found that the Judge was guilty of misconduct as his two decisions were unjudicial and were based on ultra judicial considerations. He was found guilty of misuse of powers to grant bail. He was, thus, removed from office by Governor General's order on 22 April 1949.

Justice V. Ramaswami Case[4]: Justice Ramaswami was appointed a judge of the S.C. from his the then position of C.J. of P&H High Court on October 6, 1989. The press reported, "Financial irregularities and violation of service rules against the judge". He spent lavishly on furniture for his residence, he purchased carpets on 70 percent more value then prevailing in the market, purchased 25 silver maces for the H.C. with out going through the procedure of inviting quotations. The state exchequer paid huge bills for his residence telephone. He gave four promotion to his subordinate in 18 months on specially created posts. On the basis of press reports, the C.J.I. advised justice Ramawami to desist from discharging judicial functions pending investingation and set up a three judge committee to inquire in to the matter. The C.J. was aware that as C.J. he had on power to order an inquiry against the sitting judge but has ordered an informal inquiry as the head of judiciary, the committee did not find any impropriety against justice Ramaswami and had submitted that he should not be advised to desist, from working as judge. There upon Justice Ramaswami again started his judicial function.

But, S.C. Bar Association aggrieved on the matter requested the C.J. not to assign any judicial work to Justice Ramaswami but of no avail. After so many happenings, committees etc. Ultimately 108 members of lok Sabha gave 40 page notice and 19 enclosures to the President of India for removal of Justice Ramaswami. Later on, a motion of impeachment against justice Ramaswami was presented in the parliament but it failed as it secured only 196 votes, much short of requisite 50 percent of 529 members of the house and two third of the 401 present and voting.

Justice K. Veeraswami Case[5]: Justice Veerasawami became the judge of High Court of Madras on feb. 20, 1960. On may 1, 1969 he become the C.J. from which he retired on 7.4.1976. On 24th feb. 1976, before his retirement a complaint was made to the Delhi Special Police establishment (C.B.I.) that during his tenure as judge and chief Justice he had acquired assets disproportionate to his known source of income. On 24.2.1976 the CBI registered a case against him with issuance of FIR was filed in one of the courts in Delhi. It was alleged that Justice Veerasawami could not satisfy for his disproportionate assets so he commited an offence of misconduct under section 5(1) and 5(2) on the Prevention of Corruption Act, 1974.

After a very prolong legal battle of 16 years in the High Court no decision could be given. Justice Veerasawami also contended that he had not been given any opportunity to present his case ultimately the High Court of Madras stayed till April 20, 1992 the criminal proceedings against him. Thus even after the lapse of 16 years the proceedings against him could not be started.

Justice A.M. Bhattacharjee Case[6]: The Chief Justice of Bombay High Court, Mr. Justice Bhattacharjee had to resign from his post of March 6, 1995 to be effective from April 1, 1995. It all stated when Bar Council of Maharashtra & Goa and Advocates Association of Western India started again agitation that he should demit his office as a judge. Mr. Justice Bhattacharjee, it was alleged, had entered into a contract with Roebuck Publishing, London would pay him U.S. $ 80,000 for his book "Muslim Law and the Constitution." The Justice had also continuing negotiations with the above firm for the payment of U.S. $ 75,000 for his another book "Hindu Law and the Constitutions." The Bar Council of Maharashtra alleged that he had been paid a large sum of money as royalty for the said book. Ultimately, the role of the Bar Council were decided by the Supreme Court of India[7]. The Supreme Court pronounced the direction for self regulation. The Chief Justice of India after enquiring and satisfaction shall advice the judge concerned to act according to advice. And morality requires that the judge concerned shall follow the advice of the Chief Justice. (*ibid*)

Justice B. P. Banarjee Case: Salt Lake City, one of the prime locations in Calcutta had certain Governmental lands, the allotments of which were challenged in *Bidhannagar (SaltLake) welfare association* v. *State of West Bangal*[8]. The timeline in this case was established in the Supreme Court through records of the Calacutta High Court and Government of West Bengal and was significant in establishing the conduct of the judge concerned. The allotment matter came to be listed before Justice B.P. Bannerjee of the Calcutta Hith court on 20th June, 1986. On the very same day *i.e.* 20th June, 1986. Justice Baanerjee made an application to C.M., Jyoti Basu for allotment of land in his favour out of the Chief Minster's discretionary quota at Salt Lake City. Untill, the allotement of plot to Justice Banarijee, he passed an interim order forbidding any allotment, and did not hear the case on next hearings. No Hearing took place till on 16th October 1987, the C.M. passed an order allotting a plot in the judge's favour.

The behavior of the judge challenged in the S.C.[9]. The S.C. adversarily commented on the behaviour of the judge and held that the learned judge had misused his functions. Though, S.C chose not to pursue the contention of criminal contempt against respondent Justice Banarjee in making false averments on affidavit. In its order, the S.C. directed of quashing of the allotment and respondent judge was directed to vacate the house after receiving the expenditure incurred by him in construction of the house on the basis of prevalent rates at the time of construction. In the alternative if he wished to receive the prevalent market value, the house was to be put to public auction with prevalent market value as reserve price. The price of the house fetched in auction was to be paid to Justice Banarjee within a week of which he was to vacate the house.

Again, it is respectfully submitted that such an order of paying prevalent market value to the delinquent judge appears more like on a real estate investment rather than a disciplining act.

Mysore Resort Sex Case, 2002[10]: In November 2002, newspapers of the nation reported the involvement of three judges of the Karnataka H.C. in a sexual misconduct. The incident reported allegedly occurred in a private resort in maysore and newspaper carried the news report along with the names and Photographs of the judge. Following the understandable outcry, a committee comprising C.J. C.K. Thakkar of Bombay H.C. – J.L. Gupta of Kerala and February 2003 the committee exonerated all the three judges of all charges of misbehavior and no further action was taken. Contempt proceedings were initiated against the editors, printers, publishers and reporters of newspapers featuring the news reports. However, the committee's findings were not made public and a PIL for the same was dismissed[11].

The Cash for job Scam, 2002[12]: Corruption in Public Services Commission does not perhaps evoke overly strong emotions anymore. But the involvement of judges of higher judiciary in a nexus with officers of the commission in a job scam is a different matter altogether. On 25 march 2002, the Punjab Vigilance Bureau arrested the PPSC chairman, Ravinder Pal Singh Sidhu, for accepting bribes in return for appointment to the Punjab Civil Services. On further inquiry, it came to know that three judges of P. & H. H.C. sought the help of disgraced PPSC chief to ensure that their daughters and other kin topped examination conducted by commission. Two inquiry indicted the judges. The "in house" inquiry committee exonerated Justice M.L. Singhal, while holding Justice M.S. Gill and justice A.S. Gill, Guilty of misconducts.[13] Following the findings and the advise of CJI, Justice A.S. Gill went on leave till retirement. However Justice M.S. Gill took no steps on the advise and thus, continued in service. The inquiry report of three member's in house committee not made public.

Sexual Favour for Judgment Case, 2003 : [14]In December 2002, a lady doctor Sunita Malviya, in Jaipur filed a complaint against deputy registrar of the Rajasthan High Court, in return for a favourabale judgement. The anti –corruption bureau charge-sheeted the Deputy Registrar under section 16 of the Rajasthan civil services (classification, control and appeal) rules 1958. Putting into motion the in-house procedure, the then Chief Justice of India, G.B. Pattanaik Constituted a panel comprising of the then Chief Justice of Punjab and Haryana High court, Justice B.K. Roy, the then Acting Chief Justice of Delhi High Court Dvender Gupta and justice Aftab alam of the Patna High Court to look in to the allegations against the judge. Following the indictment, the judge stopped attending the court. Pattanaik J. preferred not to take any action against the judge since the inquiry panel also came up with fresh allegations of corruption against the errant judge, in the meantime, Pattanaik J., retired and justice V.N. Khare took over the new Chief Justice of India. To whom the panel finally handed over the report. Following the advisce of Khare J., besed on the report of the inquiry panel. Justice Madan finally handed over his resignation to President A.P.J. Abdul Kalam on march 21 , 2003 to put an end to the unsavory episode.

Striking judges Case: A Punjab and Haryana High court Bench comprising chief justice B.K. Roy and Suryakanta J. had been in a public interest petition concerning the alleged illegal construction of the forest hill country club and resort on forest land in violation of laws and regulations. During the hearing, the club submitted a list of the names of VIPs who had been given honorary membership. Since the list included the names of the two judges. The Chief Justice sought an explanation for this conduct from the named judges. The two judges chose to go on a leave instead shockingly backed by *en masse* leave by all but two judges of the high court. Further, the judges reportedly wrote back to Roy J. Saying that he had no jurisdiction to hold them to account for their membership of the club. This was followed by a protest letter addressed to the Chief Justice signed by about 20 judges of the high court. This complete breakdown of communication between the Chief Justice and other judges was a reportedly a result of months of mounting tension between them. The fault might have laid on either side but the undisputed fact was that the action of no less than 25 of the 28 judges of a High Court, resorting to such "collective action" reminiscent of trade unionism, dealt a fresh blow to the credibility of judiciary. The striking judges went back to work following an appeal to some of their senior members by the Chief Justice of India – designate justice, S. Rajendra Babu[15]. The matter appears a fit case for constitution of an in – house committee to investigate wheather the two judges had in fact accepted honorary membership from a tainted club or not. However, what further actions were taken on the original question of honorary membership of the two judges was not revealed.

Justice Ajit Sengupta Case[16]: The Calcutta High Court judge made it a routine to hear *ex-parte*, *ad-interim* stay order to anticipatory bail pleas from smugglers, having link with the Mumbai under world. He was arrested for FERA violations after retirement.

Justice A.S. Anand Case[17]: As CJI, he was accused of using his position to get the subordinate judiciary to rule in favour of his wife and mother–in–law in a suit that had been barred by imitation for two decades. There was also a CBI probe after a dispute arose over his age in 2000. The investigation report was not made public.

Justice A,M Ahmadi Case[18]: When he was CJI (oct. 1994- Mar 1997). His daughter, Tasneem a lawyer in the Delhi High Court, caused eyebrows to be raised for getting "special" treatment from certain judges. When some members of the bar sought a resolutaion banning lawyer relatives of judges from staying in the same house, the C.J.I. got members to defeat the motion.

D.D.A.Land Scam, 2003: In 2003 the Central Bureau of Investigation was conducting inquiries on allegations of illegalities in the Delhi Development Authority. As part of the inquires it raided the house of a person named Dharambir Khattar Known to act as middleman. During the course of the raid around 20 case files from the Delhi High Court were also recovered. Reportedly, the CBI director contacted the Chief Justice of India for advice who in turn informed these developments to Chief Justice of the Delhi High Court. On the Next working day, it was announced that justice Shamit Mukherjee, an additional judge of the Delhi High Court, had resigned from his post. Mukherjee J. Later attempted to withdraw his resignation but by then, President Kalam had already accepted the resignation. Justice Mukherjee and four other persons were thus charge- sheeted in what came to be known as D.D.A. land Scam Case[19].

These are but a few instances of the lack of public morality that has seeped into our judicial system and are also a pointer to the fact that even the presiding – deities of higher courts are not immune from the glamour, glitter and galloping corruption in the society. We, in this country are passing through times of travel in its legal history. Court houses and their presiding- deities are called upon to decide issues of greatest moment from the political, economic and social angles. Infct the decay that has recently surfaced- out shows the existence of the ills which had plagued the judicial system.

3. Enforcement of Judicial Ethics Code : Problems

Independence of judiciary and judicial Accountability:

In the face of the harm caused by judicial corruption, misconduct and rescusal, some questions why judicial independence should create a barrier to any potentially affective means of ensuring judicial accountability. Judicial independence, however, should not be so lightly dismissed. It, too, is vital for preserving a system of liberty and rule of law.

The Indian Constitution has glorious objectives of securing to all citizens justice – social economic and political[20]. The higher judiciary has a power of judicial review without which the rule of law would be a "teasing illusion"[21] and an "ornamental show piece" therefore the farms of the constitution articulated many provisions for the independence of judiciary. Judges of the higher court retired at the age of 65[22] and 62[23] respectively and can be removed by procedure of impeachment and the ground of "proved misbehaviour" or in capacity[24]. The status protect them from civil[25] and criminal[26]liability. Importance of independence of judiciary is 'cardinal feature'[27], fighting faith[28], Basic structure[29] and central Value[30]. In the context of the independence of the judiciary, the Superme Court has held that separation of power is the basic feature of the constitution[31]. As stated, judicial independence requires that:

a. the Judiciary shall decide matters before it in accordance with its impartial assessment of the facts and its understanding of the law without improper influences, direct or indirect, from any source; and

b. the judiciary has jurisdiction, directly or by way of review, over all issues of justiciable nature.

So why is judicial independence so important? Maintaining and independent judiciary is essential to the attainment of the judiciary's rule of law governance objectives and the proper performance in a free society. Such independence must be guaranteed by the state and enshrined in the Constituation so that any illegal actions by the executive or legislature can be checked. As Alexander Hamilton point out, limitations on government "can be preserved in practice no other way then through the medium of the Courts of Justice…" Without this all the reservations of particulars rights or privileges would amount to nothing[32].

Judicial Independence ensured that powerful individuals must conform to the law: with an independent judiciary no is above the law and none is below the law. Without it, there is little hope for the rule of the law. As it is stated, "power tends to corrupt and absolute power corrupts absolutely". To restrain unauthorized exercise of power effectively, judges must be beyond the reach of those who would transfer or remove them because of their decision. Indian history is also evident, during the era of emergency; the government has tried to destroy the rule of law and independence of judiciary. Thus the need for judicial independence says not for judges or the judiciary *per se*, but for the people.

Tension between Judicial Independence and judicial accountability:

Although both judicial independence and judicial accountability are vital for maintaining the rule of law, they sometimes seem to conflict. When misconduct is alleged, there will be demand for action against the judges in question, just as there would be against any government actor. Judicial independence should not protect a judge from investigation and censure for a valid charge; judge should not be immune from the demand of justice for misdeeds. Indeed there are several valid reasons for censure of removal a judge, such as bribery, other corruption, commission of a felony, and senility.

The issue of crime importance, therefore, is how to deset judicial corruption accurately, to investigate it fairly, and to eradicate effectively with out eroding an independent judiciary. The executive and legislative branches should not be able to use investigation as retaliation for unpopular decisions or to exert subtle pressure on judges through hints or treats of investigation.

If judges are guility of a crime, it stands to reason that they should be open to criminal prosecution the same as any one else. But not all judicial misconduct is criminal. Most government of the world have some other type of investigation for lesser judicial misconduct. Various investigatory systems are possible, but it is suggested that to preserve judicial independence, these investigation should be left primarily to the judicial branch[33]. Giving power to the executive or legislative branch to investigate judges for all misconduct can interfere with an independent judiciary[34]. It provides to ready a tool to harass judges whose judicial opinions are not consistent with the wishes of political leaders.[35]

Because judicial independence depend on the public acceptance of the judiciary as a fare, just and honest body, the judiciary must carefully structure its investigation to assure the public that judiciary is taking care of its own problem of corruption. In the end, judicial independence can be preserved only if judges exert the moral leadership and strength of character required to endure judicial accountability[36]. Perhaps, it may true, but not completely.

Secure Tenure & "Proved Misbehaviour" Clause of the Constitution:

The conduct of every judge should be above reproach. The expectation of the public from the judiciary is very high. Any act which shakes society’s confidence in efficiency, integrity and from impartiality of the court should be forbidden. A judges’ official conduct should be free impropriety and the appearance of impropriety. A judge should refrain from participation in activities, which lessen his public respect.

As we have discussed earlier in this research paper, significance of the independent judiciary and provision of the Indian constitution to ensure the independence of the judiciary. The constitution provides a secure tenure to the judges of the higher judiciary till proved misbehaviour or retirement. Article 124 (4) of the Indian constitution sanctions action for removal of a judge on proved misbehaviour or in capacity. The word ‘misbehaviour’ was advisedly defined. It is a vague and elastic term and embraces within its sweep different facets of Conduct as oppose to good conduct.

The word misbehaviour is synonymous to word misconduct? Misconduct means misconduct arising out form ill motive; act of negligence, error of judgment etc.[37] According to Black’s law dictionary, misconduct is "transgression of established and define rule of action, a forbidden act, a dereliction from duty, unlawful behaviour, willful in character, improper or wrong behaviour, it’s synonyms are misdemeanour misdeed, misbehaviour, delinquency, impropriety, mismanagement, offence but not negligence or carelessness." The term misconduct implies wrongful intention not a mere error of judement is not necessary the same thing as conduct involving moral turpitude[38]. In the context of disciplinary proceeding against a solicitor, the word 'misconduct' was construed as professional misconduct extending to conduct which shows him to be unworthy member of the legal profession but these standards of misconduct do not apply on the part of an arbitrator or a judge[39].

On several occasion, the Supreme Court has considered the misbehaviour and has failed to define or interpret the word misbehaviour[40] and makes it illusive.

In Krishnaswami case, K. Ramaswamy J. considers the scope of 'misbehaviour' in article 124 (4) and held;

"Every Act or conduct or even error of judgment or negligence of acts by higher judiciary *per se* does not amount to misbehaviour. Willful abuse of judicial office, willful misconduct in the office corruption lack of integrity or any other offence involving moral turpitude would be misbehavior. Misconduct implies actuation of some degree of *mens rea* by the doer; judicial finding of guilty of grave crime is misconduct. Persistence failure to *malus* would be misbehaviour. Misbehavior would extend to conduct of judges in or beyond the execution of judicial office even administrative action or omission to need accompaniment of *mens rea*."

Thus, the term misbehaviour is very wide. If the judges act or omission brings disrepute or dishonor to the institution of judiciary and undermines the faith and confidence of public in judicial action it is misbehaviour, therefore canon of ethics are essentials for judges as well as for the advocates. A judge should not be left to determine and decide for himself what is proper and what not. In the proper administration of justice a uniform standard code is absolutely necessary.

Removal of judges : Action under Article 124 (4):

Judges of the higher judiciary can be removed as per procedure laid down in article 124 (4)[41]. Further, Article 124(5) of the Indian Constitution empowers the parliament to make law, regulate the procedure for the presentation of an address and for the investigation and proof of the misbehaviour or incapacity of a judge. Therefore, this procedure was enacted in the Judges (Inquiry) Act, 1968 to regulate the procedure for the investigation and proof of the misbehaviour or incapacity of a judge of the Supreme Court or of a High Court and for the presentation of an address by parliament to the president and for matters connected therewith. A two step procedure is formulated by the act[42] read along with Article 124 (4) of the Constitution of India.

1. A notice of motion for presenting an address to the president praying for the removal of a judge has to be given to the chairman or speaker signed by a requisite member of member of the either house in which the notice is given. Once a motion is admitted, the speaker or chairman has to constitute a committee consisting of three members one from among the Chief Justice of India and other judge of the Supreme Court. One from among the Chief Justices of the high court and one who in the opinion of the speaker

or chairman is distinguished jurist, the committee then frames charges against the accused judges on the basis of which the investigation is proposed to be held .

2. If the report finds judge guilty of misbehaviour, then the motion is put to discussion and vote. Once the motion is adopted by both the houses of the parliament, the misbehaviour or incapacity of the judges is deemed to be proved. It is the procedure of removal of a judge of the higher judiciary that is very cumbersome and lengthy.

Article 124 (4) in Action:

Unfortunately, the only time the machinery of removal of judges put into action, since the commencement of the constitution the parliament of India failed to act with the wisdom that is its founding father had hopped for.

It was Justice V. Ramaswamy[43] for whom are removal motion brought in the Parliament for 'proved misbehavior' that was proved under the Judges Inquiry Act, 1968. The motion was thus put to vote and there were 196 votes in favour and non against but target of requisite minimum vote of 273 for the success of the motion could not be achieved because the ruling party decided to abstain from voting. Justice V. Ramaswamy continued for his full term and retired on honorably in year, 1994.

It was black day of history of Indian democracy and the parliament a motion of a proved misbehaviour of a judge could not be succeed as a lacking morality of our legislatures.

Power of Contempt of Court:

Oftenly, the judges of higher judiciary misused the power of contempt of court to hide their misconduct. The legal fortress in which they live has been furtherProtected by the Contempt of Court Act, 1971, which empowers judges to protect themselves on the plea that such exposures would 'scandalize' the Court-through it is generally misused to gag honest criticism. Truth can not scandalize. "Sunlight is the best disc infectant", said American Judge, Louis D. Brandesis.[44] Yet, Indian Court hold people guilty of contempt at literally, the drop of a hat.[45]

In a High Court, some judges routinely threaten to haul senior IAS Officer under the contempt law on charges as ludicrous as " attempting to sound technical" or "exhibition of expertise".[46] The Shield of contempt used by Justice Ajit Sen Gupta the Calcutta High Court toward off an inquiry into the source of funds for his daughter's education abroad.[47] It is another matter that the enforcement directorate official raided his house the day after his retirement and got him arrested.[48]In the Mysore Resort Sex Scandal, the admission of 54 cases against media persons, speaks for itself[49] But, Justice B.P. Banarjee did not hold liable for criminal contempt of Court by the Supreme Court in Tarak Singh Case in which he filed a false affidavit. Though, he was fully liable for the contempt of Court.[50] It is very interesting thing that the judges of subordinate judiciary has held responsible for contempt of Court by the Supreme Court for their own courts. The attempted judicial stonewalling and rampant misuse the contempt laws had laid to a situation that constitutional historian H.M. Seervai had warned against-having law for a corrupt judge.[51]

Public and Media criticism of judges for their misconduct and unjustified judgement is common feature throughout the world today.[52] Sir Anthony Mason Says:

"Like other public institution, the judiciary must be subject to fair criticism and, if the occasion demands it, trenchant criticism. What I am concerned with is respose to criticism, particularly criticism that is illegitimate and irresponsible."[53]

Recent orders for contempt of courts writers who have criticize their judges or their judgements have brought into focus the tension between courts and such writers. The symbolic punishment given to the well known writer MsArandhati Roy is in point[54].

The Contempt of Court Act 1978 punishes scandalizing of the Court the Supreme Court has held that the fundamental right of a citizen to free speech and expression has not abolished the offence of scandalizing the court.[55] However, the Supreme Court has not balanced the competing the necessity maintaining the administration of the justice unimpaired from unjustified attacks and securrilous writing with the equal necessity for legitimate criticism of judges and courts.

Vigorous criticism of the judiciary is now as necessary in a democracy as for the other branches of government. If honest critics of a judge are to be find or imprisoned even initiation of impeachment of a judge of higher court is misbehavior would be stifled. The offence of the scandalizing the court is necessary to be retained in India as it has been found necessary also in other countries, but the offence requires to be tightly circumscribed for only the obvious and outrageous cases of bringing the judiciary into disrepute.

There are judgments of the Supreme Court which hold that a contemnor can not allowed to justify the contempt and, has defended summary proceedings of the contempt cases[56]. It is questionable, whether the contempt proceeding should be summary or speedy?

The reasoning for not allowing truth as a defence is unpersuasive. Revelation of truth when its revelation is for public benefit cannot be contempt of court though the criticism made is such as to deprive the court of public confidence. Another serious concern in the present law is that it is not necessary to prove affirmatively that there has been an actual interfere with the administration of justice by reason of a contemptuous statement: it is enough if it is also not a necessary ingredient to the offence that there should be an intention to interfere with the administration of justice.

The present test of mere likelihood of endangering the administration of justice is too deterring to the fundamental right of speech, and to the necessity to make the judiciary in a democratic society. The procedure for punitive action by court or judge alleged to be scandalize also requires to be recast from its inquisitorial and summary way to a approximate to a fair trial

In short legitimate public criticism of judicial performance is strong means of ensuring accountability. Therefore the criminal law and contempt proceeding are not appropriate mechanism for restricting legitimate criticism of the courts.

Judicial Immunity:

A great support for the independence of judges is the doctrine of immunity from legal responsibility for any consequences of judicial decisions. That judges could not be held liable for damages resulting from action taken within there jurisdiction firmly established at common law.

In India, the statutes protect the judges from civil[57] and criminal[58] liability. The civil immunity granted under the references to the acts done in good faith and in addition to it, it is confined to suits in civil courts. But what would be happened when act is not done in good faith. These immunities are also great problem where judges are biased. In Justice S.P. Sinha and Justice B.P. Banarji cases[59]; are judges not liable for civil liability? Where as, the question of criminal liability of the judges concerned judges should liable for their off–bench behavior. But the cases of Justice V. Ramaswamai, Justice B.P. Banarji, the cash for job scam, Justice K. Veeraswamy show that judges of the higher judiciary free from criminal liability. It is respectfully submitted that the rule is not for protection of a malicious or a corrupt judge but for the benefit of the public, whose interest it is that the judges should be at liberty exercise their functions with independence and without fear of consequence.

4. Judicial independence v. Judicial Accountability:

Structuring a workable approach

Judges we have said perform many different roles in a political system. They are protector of the constitution, Rule of Law and fundamental Rights of individual. Infact, Judges play an important role so that 'independent judiciary' is an essential elements that Judges can be played their role without fear and favour.

Therefore an important question is how to decide accountability of judges with maintaining the independence of Judiciary. Power of Contempt of Court, judicial immunity, secure tenure and proved misbehavior, as we have said earlier, are the hurdles of to decide the accountability. Though, vanishing judicial ethics, misbehavior and corruption in judiciary are anxiety of the people, and that is being destroyed the image and dignity of the judiciary in common people.

While various countries can do take differing approaches to solving problems of Judicial corruption, many common issue and question remains at threshold question, for example, is how to define "Corruption" or "misconduct" or "misbehavior".

When does a gift or friendship become a bribe or undue influence? Should the appearance of corruption be sufficient to trigger an investigation? Our legal system therefore must determine and define what behavior is serious enough to warrant a judicial Investigation and sanctions. A related question is what instruction should be given to judges. Judges should be given notice of what behavior is considered misconduct or misbehavior. Many countries, including the UntiedStates, have written canons of ethics of a code of judicial conduct[60]. Such codes provide instructions to new judges and can serve as bases for courses on ethics to present judges.

The Bar should require to pay close attention to lawyer conduct and determined how it can enforce ethical conduct of lawyers. Some possibilities for education include requiring a lawyer ethics course in law school, having an ethics examination before admission to the Bar, and requiring the taking of ethics courses to maintain a license to practice. The Bar can also have an investigation department within the Bar association, which would have power to disbar lawyers for unethical conduct with judge, to avoid the justice A. Ahmadi type cases.

5. Conclusion

Obviously, it is true that image of the judiciary is declining in the society today. The former CJI, S.P. Bharucha said that "up to 20% of judges in India were corrupt. The Karnataka sex scandal, sexual favour scandal, the cash for job scam, Justice B.P. Banarji case etc.-- all hit the image of judiciary. Though a code of judicial conduct had been adopted by the judiciary in 1997, but it seems judges are not willing to follow it. It is necessary to regulate external behavior and conduct of judges. It is only possible to define the 'misbehavior' or enacting a code of judicial conduct with effective enforcement mechanism.

The judiciary is the guarding of the constitution, rule of law, and bill of rights of citizen. Therefore, the Indian constitution ensures all the provisions to make an Independent judiciary. Some other factors like-contempt power, judicial immunity and secure tenure are blocking road to make judge accountable.

Media criticism of judgment and judges, in fact, is a great medium to decide accountability of judges and judiciary. But, judges use contempt power to check media criticism or reporting to hide their misconduct. Therefore, it is necessary making contempt law more reasonable.

Since 1994, the CJI is responsible for appointment of judges. The Constitution provides the provision to appoint the jurist as the judges but since independence, not a single jurist is appointed as judge in the Supreme Court because our country does not have jurist except that advocates. In spite of it, men who have questionable character is appointed as a judge in the higher judiciary. It is because the appointment process is not fair and open. Therefore, we are required to make appointment process open, fair and democratic. For this purpose, we require to establish an independent judicial commission for the appointment of judges.[79]

❑

Biblography

1. Aiyar, P.R., *Legal and Professional Ethics* (Nagpur : Wadhwa Co., 2003)
2. Das, Cryus and Chandra, K. (ed.), *Judges and Judicial Accountability* (Delhi: Uni. Law Pub. 2005),
3. *Indian Penal Code 1872*
4. Jain, M.P., "Are Judges Accountable", 30 *Journal of The Legal Studies* (1999-2000) p. 27
5. L.C.I., "*195th Report on the Judges (Inquiry) Bill 2005*"
6. Lahoti, Justice R.C., "*Canons of Judicial Ethics*" (2005)
7. Mahajan , V.D., *Jurisprudence & Legal Theory* (Lucknow: Eastern Book Co., 1987)
8. Malcolm, George A., *Legal and Judicial Ethics* (Manila: The Lawyers Co-Ope. Pub.Co, 1949)
9. Mitra,Sumit, "Rot in the system", *India Today*, January 20, 2003
10. P. Ramnath Aiyar's *Law Lexicon*
11. Sorabji, Soli J. (ed.), *Law and Justice* (Delhi : Uni. Law Pub., 2003)
12. Stroud's *Judicial Dictionary.*
13. *The Indian Constitution*
14. *The Judges (Inquiry) Act, 1968*
15. *The Judges (Inquiry) Bill, 2006*
16. *The Judicial Protection Act*
17. Vankatesan, V., "Judging Judges", *Frontline*, Jan. 18-31, 2003
18. Venktasan, V., "An Unprecedented Act", *Frontline*, May-8-21, 2004

फोन : 011-45579335
मोबाइल : 09899651272
09899651872

सदस्यता फॉर्म

विधि भारती परिषद्
बीएच-48 (पूर्वी) शालीमार बाग, दिल्ली-110088

PEER REVIEWED REFREED JOURNAL

महिला विधि भारती पत्रिका पूर्व में यू.जी.सी. की सूची में भी शामिल थी।
क्रमांक 156, पत्रिका संख्या 48462

कृपया मुझे विधि भारती परिषद् का सदस्य बनाने की कृपा करें। मेरा चैक/बैंक ड्रॉफ्ट संलग्न है –

1.	वार्षिक सदस्य शुल्क	500/– रुपए
2.	आजीवन सदस्य शुल्क	6,000/– रुपए
3.	संस्थागत वार्षिक सदस्य शुल्क	500/– रुपए
4.	संस्थागत आजीवन सदस्य शुल्क	20,000/– रुपए

नाम:

शैक्षिक योग्यता:

व्यवसाय:

कोई प्रकाशित कृतियाँ :

स्थाई पता:

फोन (कार्यालय) : (घर) :

मोबाइल : **ई-मेल :**

नोट : विधि भारती परिषद् की सदस्यता के लिए शुल्क परिषद् के बैंक खाते में जमा कराया जा सकता है। कृपया शुल्क के साथ बैंक सेवा चार्ज 100/– रुपए जमा कराएँ।

Vidhi Bharati Parishad : SBI SB Account No. 10115361055
IFSC Code : SBIN0003702

R.N.I. 61909/95 ISSN : 0976-0024

विधि भारती परिषद् के महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

1. अनुवाद के नये परिप्रेक्ष्य, लेखक : सन्तोष खन्ना, मूल्य : 500/- रुपए
2. हिंदी और भारतीय साहित्य में महिला सरोकार, सं. : सन्तोष खन्ना, 2016, मूल्य : 450/- रुपए
3. सामाजिक-विधिक सरोकारों की संस्कृति, लेखिका : सन्तोष खन्ना, 2012, मूल्य : 77/- रुपए
4. इतिहास बनता समय, लेखिका : सन्तोष खन्ना, 2012, मूल्य : 300/- रुपए
5. 'क्या पाया?क्या खोया?' (कहानी-संग्रह), डॉ. उषा देव, मूल्य : 200/- रुपए
6. रोशनी, (उपन्यास), लेखिका : सन्तोष खन्ना, 2013, मूल्य : 410/- रुपए
7. 'संग्राम शेष है' (कहानी-संग्रह), डॉ. उषा देव, मूल्य : 250/- रुपए
8. 21वीं शती में नारी : कानून और सरोकार, मूल्य : 350/- रुपए
9. 'क्या मैं ग़लत थी?' (कहानी-संग्रह), डॉ. उषा देव, मूल्य : 200/- रुपए
10. 21वीं शती में मानव अधिकार : दशा और दिशा, मूल्य : 250/- रुपए
11. भारत का संविधान : अनुचिंतन के नये क्षितिज, मूल्य : 250/- रुपए (उपलब्ध नहीं है)
12. भारतीय क़ानूनों का समाजशास्त्र, सन्तोष खन्ना, मूल्य : 500/- रुपए (विधि, न्याय मंत्रालय द्वारा पुरस्कृत)
13. Dimensions of Environmental Law, Ed. Santosh Khanna, Price : 400/–Rs.
14. Reappraisal of the Constitution, Ed. Santosh Khanna, Price : 350/-Rs.
15. Human Rights Today, Ed. Santosh Khanna, Price : 500/–Rs.
16. The Consumer Protection Law and the Rights of Consumers
    Ed. Santosh Khanna, Price : 400/–Rs.
17. स्मृतियाँ (कहानी-संग्रह) लेखक : अशफ़ाक़ हनीफ़, विधि भारती परिषद्, मूल्य : 100/-रुपए
18. उपभोक्ता संरक्षण क़ानून और न्याय, मूल्य : 250/- रुपए
19. 'साक्षी' (कविता-संग्रह), सन्तोष खन्ना, मूल्य : 60/- रुपए
20. 'भावी कविता' (कविता-संग्रह), सन्तोष खन्ना, मूल्य : 120/- रुपए
21. 'संत जोन', (नाट्यानुवाद), सन्तोष खन्ना, मूल्य : 245/- रुपए
22. पर्यावरण एवं पर्यावरण संरक्षण क़ानून, सं. सन्तोष खन्ना, मूल्य : 200/- रुपए
23. 'तुम कहो तो!' (मौलिक नाटक) नाटककार : सन्तोष खन्ना, मूल्य : 125/- रुपए
24. 'कजरी' (कथा-संग्रह) लेखिका : डॉ. उषा देव, मूल्य : 175/- रुपए
25. 'द्रौपदी ज़िंदा है' (कथा-संग्रह) लेखिका : डॉ. उषा देव, मूल्य : 150/- रुपए
26. 'ख़ुशी के पल' (कथा-संग्रह) डॉ. सरस्वती बाली, मूल्य : 150/- रुपए (हिंदी अकादमी द्वारा पुरस्कृत)
27. सूचना का अधिकार अधिनियम : कार्यान्वयन और चुनौतियाँ, सं. सन्तोष खन्ना, मूल्य : 250/- रुपए
28. 'अब की लड़का नहीं' (कहानी-संग्रह) लेखिका : डॉ. उषा देव, मूल्य : 250/- रुपए
29. 'आज का दुर्वासा!' (कहानी-संग्रह), लेखिका : सन्तोष खन्ना, मूल्य : 250/- रुपए
30. 'सन्धि-पत्र' (कहानी-संग्रह), लेखिका : डॉ. उषा देव, 2011, मूल्य : 300/- रुपए
31. 'भारत की संसद और सामाजिक सरोकार', सं. सन्तोष खन्ना, 2011, मूल्य : 350/- रुपए
32. 'सब सुंदर है!' (कहानी-संग्रह), लेखिका : डॉ. उषा देव, 2012, मूल्य : 300/- रुपए
33. Birbhadra Karkidholi : The Flight of a Skylark, Ed. Prof. Om Raz, 2017, 300/-
34. 'समय का सच' (कविता-संग्रह), सन्तोष खन्ना, मूल्य : 250/- रुपए
35. भारत में चुनाव, हिंदी की भूमिका और चुनाव सुधार, सं. सन्तोष खन्ना, मूल्य : 250/- रुपए
36. सेतु के आर-पार, (नाटक) नाटककार : सन्तोष खन्ना, मूल्य : 300/- रुपए
37. भारत का संविधान : नए परिप्रेक्ष्य, 2020, मूल्य : 500/- रुपए।
38. भारत का संविधान, संस्कृति और क़ानून, 2021, मूल्य : 100/- रुपए
39. अंतरराष्ट्रीय काव्य-संग्रह 'काव्य सलिला', 2022, मूल्य : 975/- रुपए

पुस्तकें मिलने का पता : विधि भारती परिषद

बी.एच/48 (पूर्वी), शालीमार बाग, दिल्ली-110088

टेलीफोन : 011-45579335, **मोबाइल** : 9899651872, 9899651272

Published & Printed by Santosh Khanna On Behalf of Vidhi Bharati Parishad, BH/48, (Poorvi) Shalimar Bagh, Delhi-88, Mobile : 09899651872, 09899651272 & Printed at Archana Printers, 1/1955, Street No. 22-A, East Ram Nagar, Shahadra, Delhi-32, Mobile : 9811357243

Our New Life Members

262. **Dr Sanjeev Kumar**
C-81, Sector 30,
Noida-203001

263. **Smt. Aryavarti Saroj**
Flat no. 904, Tower1
iMac Heights, Vibhuti Khand
Gomti Nagar, Lucknow-226010

264. **Dr. S.S. Dass**
Assistant Professor
Centre for Juridical.Studies
Dibrugarh University
Dibrugarh-786004, Assam

265. **Dr. Sudarshan Verma**
Professor, IRWO IIA/64,
Mansarovar Bajana Sector P
Near Transport Nagar,
Lucknow-226012

266. **Dr. Minakshi Joshi**
Banla 9, Madhura, (Khat Road)
Ramayan Nagri,
Bhandara-441904

267. **Smt. Sanju Lata**
Assistant Professor
Government Law College, Palli

268. **Dr. Niti Nipun Saxena**
D-37, Sampat Hills, Rau Bypass
Indore-452016

269. **Dr. Jyoti Mishra**
162, Manvata Nagar
Kanodia Road, Indore-452016

270. **Dr. Sunita Srivastava**
3-2, Pakiza Lifestyles
Near Bypass Khajrana,
Indore-452016

271. **Dr. Alka Sharma**
C-4/201, Capital Apartments,
Vasundhra Enclave, Delhi-110096

272. **Dr. Anjana Rao**
Dean of Adminstration,
Faculty of Law, Block no. 20,
Baba Mast Nath University,
Rohtak-124021

273. **Dr. Madhu Bala**
House No. 158/1,
Baba Farid Avenue,
Gurdaspur-143522, Panjab

274. **Dr. Chandra Prakash**
Assistant Professor (Sociology)
SRSD Govt. Degree College
Jainti (Almora) University Soban
Sing Jeena, Almora
(Uttrakhand)

275. **Ms. Renu**
K-292, Shakur Pur
Delhi-110034

276. **Dr. Sanskriti Mishra**
Assistant Professor
Sharda University
House No. H-901,
Tower No. 3,
Paramount Floraville,
Sectow 137,
Noida-201305

277. **Smt. Neha Rathee**
Deputy Director
88D, First Floor
Kamla Nagar, Delhi-110007

278. **Dr. Renuwati Rajpurohit**
C-43, Saraswati Nagar,
Basni, Jodhpur-342005

279. **Dr. Surender Yadav**
Principal, SKALE Law College,
Alwar-301001

280. **Dr. Dinesh Babu Gautam**
The Principal,
Jai Bundelkhand Law College,
Panari, Lalitpur,
Jhansi-284128

281. **Dr. Ms. Anurita Yadav**
E-143, Beta 1, Fifth Cross Road,
Greater Noida, Pin- 201310

282. **Dr. Harish Sneh Sudha Naval**
65, Sakshar Apartments,
A-3, Paschim Vihar,
New Delhi-110023

283. **Dr. Dushyant Kumar,**
C/o Shri Madan Lal Jain,
28, Arihant Colony, Ajmer-305004

284. **Dr. Tarun Kumar Kaushik**
1408, ARC Angel Divyanshu,
Rajnagar Extension,
Ghaziabad-201017

फोन : 011-27491549
मोबाइल : 09899651272
09899651872

सदस्यता फॉर्म

विधि भारती परिषद्

बीएच-48 (पूर्वी) शालीमार बाग, दिल्ली-110088

> महिला विधि भारती पत्रिका यू.जी.सी. की सूची में पहले शामिल थी।
> क्रमांक 156, पत्रिका संख्या 48462

कृपया मुझे विधि भारती परिषद् का सदस्य बनाने की कृपा करें। मेरा चैक/बैंक ड्रॉफ़्ट संलग्न है --

1.	वार्षिक सदस्य शुल्क	500/-- रुपए
2.	आजीवन सदस्य शुल्क	6,000/-- रुपए
3.	संस्थागत वार्षिक सदस्य शुल्क	500/-- रुपए
4.	संस्थागत आजीवन सदस्य शुल्क	20,000/-- रुपए

नाम : ....

शैक्षिक योग्यता : ....

व्यवसाय : ....

कोई प्रकाशित कृतियाँ : ....

स्थाई पता : ....

फोन (कार्यालय) : .... **(घर) :** ....

मोबाइल : .... **ई-मेल :** ....

नोट : विधि भारती परिषद् की सदस्यता के लिए शुल्क परिषद् के बैंक खाते में जमा कराया जा सकता है। कृपया शुल्क के साथ बैंक सेवा चार्ज 100/-- रुपए जमा कराएँ।

Vidhi Bharati Parishad : SBI SB Account No. 10115361055
IFSC Code : SBIN0003702